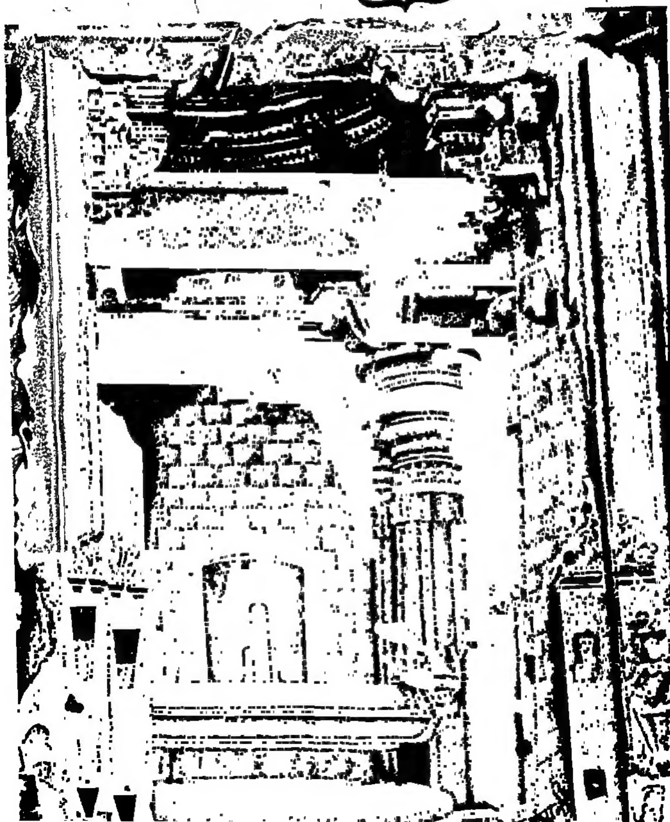
श्री खरतरगच्छीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर

भांजासुर्



भोजपुर



मुनि कान्तिसागर



प्रकाशक—
सूचना विभाग, भोपाल

स्टेट प्रेस, भोपाल.

आमुख

भारतीय संस्कृति के मननशील मनीषी और उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के व्यक्तिगत सौजन्य एवं भोपाल सरकार के लोकप्रिय मुख्य आयुक्त श्री भगवानसहाय, मुख्य मंत्री डा० शंकरदयाल शर्मा व इन्स्पेक्टर जनरल आफ पुलिस श्री श्यामसुन्दरनाथ आगा की स्नेहांकित सक्रिय प्रेरणा के फलस्वरूप "भोजपुर" पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। "भोजपुर" अत्यन्त शीघ्रता में पूर्ण करना पड़ा। परमपूज्य गुरुवर्य उपाध्याय मुनि श्री सुखसागर जी महाराज की आज्ञा के लिए वन्दनापूर्वक कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

भारतीय पुरातत्व विभाग के सेन्ट्रल सर्किल के सुपरिन्टेन्डेन्ट परम स्नेही श्री कृष्णदेवजी ने सौहार्दपूर्वक "भोजपुर" की पांडुलिपि देखकर मूल्यवान सुझाव उपस्थित किए जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूं। जनपद हिन्दी परिषद् के संयोजक श्री अविनाशचन्द्र राय तथा चेतना संपादक श्री पद्मनाभजी तैलंग, श्री देवेन्द्रनाथ "प्रशान्त" आदि पत्रकारों व श्री चन्दनमलजी घनघट का सहयोग भी उल्लेख योग्य है।

शासन के सूचना विभाग के प्रधान, सहृदय अधिकारी श्री एस० एच० हसन सा० ने अपना मूल्यवान समय देकर इसे हरतरहसे सुन्दर बनाने का पूर्ण प्रयास किया है।

आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि भविष्य में भी भोपाल शासन अनवरत प्रयत्नों द्वारा सांस्कृतिक रुचि को उद्बोधित करता रहेगा।

सेठ छगनलाल जी का बंगला
लालघाटी, भोपाल।
ता० १५-१-५४

मुनि कान्तिसागर

भूमिका

श्री आचार्य मुनि कांतिसागरजी से मेरा कोई पुराना परिचय नहीं है। सौभाग्य से पिछली वर्षाऋतु में वास करने के लिए वह भोपाल पधारे और थोड़े से ही समय में उनकी विद्वत्ता की चर्चा चारों ओर चल पड़ी। साहित्य और संस्कृति में दिलचस्पी रखने वालों की ओर राष्ट्रभाषा हिन्दी के शुभाकांक्षियों की एक अच्छी खासी गोष्ठी उनके नेतृत्व में बन गई। जो व्यक्ति राष्ट्रभाषा को प्रगतिशील और आगे बढ़ाने की चेष्टा कर रहे हैं, उनको शक्ति मिली। साथ ही साथ जिनको पुरातत्व में दिलचस्पी है, उन में उत्साह बढ़ा। प्राचीन और मध्यकालीन भोपाल का कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं लिखा गया है, और इसी समय यह तय किया गया कि एक ग्रन्थ "भोपाल भारती" के नाम से तैयार किया जाय जिसमें देश के इस भाग का सर्वतोमुखी इतिहास हो।

इतिहास कोई राजाओं और नवाबों के वंशजों की जीवनियों से ही सम्बन्धित नहीं होता है। उसका सम्बन्ध तो सामाजिक जीवन के पूरे रूप से होता है। इसी तरह का इतिहास लिखे जाने का निश्चय हुआ। मैं इन सब बातों की चर्चा सुना करता था, परन्तु आचार्य जी से मेरा परिचय नहीं हो पाया। अन्तिम दिन जब वह भोपाल से चल पड़े और समीप ही गांधीनगर में रात के लिये रुके, मैं उन से मिला। वहाँ पर भोजपुर के अपूर्ण शिवमन्दिर और आशापुरी की मूर्तियों और खण्डहरों की चर्चा चल पड़ी। मुनिजी ने काफी समय देकर इनके पुरातत्व का महत्व मुझे बताया। मैं कोई विज्ञ नहीं परन्तु जिस आकर्षक ढंग से उन्होंने यहां की विशेष बातें बताईं, उससे मुझे यह मालूम हुआ कि उन्होंने कितनी गहरी दृष्टि से इन चीजों का अध्ययन किया है। आचार्य जी ने यह भी बताया कि उनकी यह इच्छा है कि भोजपुर और आशापुरी के बारे में एक सचित्र मोनोग्राफ बनायें जिससे इन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थानों की ओर लोगों में दिलचस्पी पैदा हो। मुझे यह प्रस्ताव अच्छा लगा और मैंने उनसे कहा कि इस काम में तो भोपाल गवर्नमेंट को भी दिलचस्पी होगी और वह इसके छपाने में अवश्य सहायता करेगी। यह पुस्तक इसी संयोग का फल है।

भारत के वक्षस्थल में स्थित मालव के इस भूभाग में ऊंचे स्तर की कला-कृतियों का एक अमूल्य भंडार है। सांची को तो सभी जानते हैं। वह प्रियदर्शी सम्राट अशोक की गौरवगाथा से सम्बन्धित है। वहां के स्तूप और तोरण जगत प्रसिद्ध हैं। बौद्ध-कालीन युग की एक सुन्दर झांकी वहां मिलती है और वे भारतीयकला के स्वर्ण युग की अमर कहानी सुनाते हैं। परन्तु विन्ध्य की उपत्यकाओं में निर्जन वनों के बीच स्थित भोजपुर का अधूरा शिवमन्दिर मध्यकालीन भारतीय कला का एक अनुपम नमूना होते हुए भी, एक तरह से मौन साधन किए हुए है। वह उस समय की संस्कृति के विषय में और महाराज भोजराज के कला वैभव और शक्ति के बारे में बहुत कुछ कह सकता है लेकिन मार्ग की दुर्गमता के कारण वह चुप है और उसकी रोचक कहानी आज के दिन कोई सुन नहीं रहा है। इसके ही साथ आशापुरी गांव के खण्डहर लगे हुए हैं जो एक दिन पुरातत्व वेत्ताओं के लिए तीर्थस्थान होंगे। इस पुस्तक में मुनिजी ने यह प्रयत्न किया है कि लोग यह जान जायें कि यहां हमारे इतिहास का एक बहुमूल्य पृष्ठ छिपा हुआ है। मुझे आशा है कि इस लक्ष्य के पाने में उन्हें पूर्ण सफलता होगी।

भोपाल
१६ जनवरी, १९५४ ई०

भगवान सहाय
चीफ कमिश्नर

भोजपुर

आर्यों का प्रकृति प्रेम विख्यात रहा है। उसके द्वारा सौंदर्यानुभूतिजनित आनन्द से मानव उत्प्रेरित होता आया है। कला का जन्म भौतिक आवश्यकताओं में होता है। रसज्ञ उसे आत्मस्थ सौंदर्य का उद्बोधक मानता है। बाह्य प्रेरणाप्रद निमित्त से अन्तरंग अमूर्त भावों को अतुलनीय बल मिलता है। भारतीय कला के पीछे एक निश्चित, प्रेरणाशील और ज्वलन्त विचार-परम्परा सन्निहित है। कला का विकास बहुधा धर्म के आधार पर हुआ, कारण कि उसी में मानव की सामूहिक वृत्ति केन्द्रित रहती है। मन्दिर, गुफाएं एवं विविध भावनामूलक शिल्पकृतियां उसकी परिणति हैं। जब संस्कृति कला के द्वारा प्रकृति की मनोरम गोद में अपनी अस्मिता को मूर्त करती है तब उसके सौंदर्यप्रदर्शन की क्षमता तो वृद्धिगत होती ही है, साथ ही उसका सुकुमार-भावप्रेरक आनन्द भी द्विगुणित होकर अतीन्द्रिय सिद्ध हो जाता है। वास्तव में साधक अपनी चिरसाधना, नीरव स्थान में ही कर, साध्य तक पहुँच सकता है। प्रकृति उसके लिए महती प्रेरणा की दिव्य स्रोतस्विनी है और सात्विक वृत्तियों की ओर सूक्ष्म संकेत भी करती है। ऐसे प्राकृतिक, सुरम्य स्थानों पर व्यक्ति सांसारिक वृत्ति को विस्मृत कर, अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति में तन्मय हो जाता है, जो जीवन का चरमोत्कर्ष है। वाणी का गम्भीर मौन साधक की अन्तश्चेतना को जागृत कर स्फूर्तिप्रद व आत्मबलवर्धक शक्तियों का सूत्रपात करता है। वही मानवता की सुदृढ़ आधार शिला है। भारतीय अध्यात्मवाद की उत्प्रेरक भावना समाजमूलक रही है। सीमित आवश्यकताओं में जिन दिनों सांसारिक वृत्ति व्याप्त थी, उन दिनों सापेक्षतः जीवन शान्तमय था, किन्तु केवल आवश्यकताओं को ही साध्य मान कर जब से मनुष्य ने जीवन यापन प्रारम्भ किया तब से आन्तरिक शान्ति का लोप ही नहीं, अपितु, आध्यात्मिक प्रेरणा के स्थान से भी च्युत हुए जा रहे हैं। अनुभवजन्य वैचारिक परम्परा का अन्तर्मानस में तब ही उद्भव होता है जब कभी प्राचीन खण्डहर और गिरि कन्दराओं में बिखरी हुई कलात्मक सम्पत्ति के मध्य जा खड़े होते हैं। वहां गरिमामय अतीत व वन्दनीय विभूतियों का सुस्मरण होता है। ऐसी ही एक घटना जीवन में घटी जिससे हृदय पर बड़ा आघात पहुंचा और प्रतीत होने लगा कि इस सर्व साधन सम्पन्न युग में जितना राजनैतिक दासत्व स्वीकार किया गया उससे हमारी पारम्परिक चिरपोषित कलात्मक वृत्ति व रसज्ञता को निष्कासन मिला। आश्चर्य इस बात का है कि जो भावमूलक वृत्ति किसी समय पूर्व-पुरुषों के जीवन में साकार थी, वही आज हमारे दैनंदिन जीवनसे उत्तरोत्तर विलुप्त हुई जा रही है।

भोजपुर की ओर

पुरातत्व के प्रति स्वाभाविक आकर्षण के कारण मध्यप्रदेश से भोपाल आने पर प्राचीनतम खण्डहर व शिल्पस्थापत्य मूलक कलाकृतियों की गवेषणा करने से सांची के उपरान्त भोजपुर का

नाम भी कर्णगोचर हुआ और प्रमुख शासन संचालकों से ज्ञात हुआ कि भोजपुर के अवशेष भोपाल के खण्डहरों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, अतएव उनका अन्वेषण नितान्त आवश्यक है। स्थानीय कलाकार व रुचि सम्पन्न नागरिकों द्वारा भी भोजपुर जाने के लिए प्रेरणा मिली। पं० ईशनारायण जोशी, धर्मशास्त्री, लिखित पुस्तिका भी अवलोकन में आई और दर्शनीय स्थान के प्रति जो ममत्व और विश्वास था, वह भावना के रूप में परिवर्तित हो चला। फलस्वरूप १०-१२-५२ को मैं बाबू बेवरचंद जैन व श्री प्रशान्त जी के साथ भोजपुर का अतीत ज्योति के दर्शनार्थ पैदल प्रस्थित हुआ।

प्रकृति के प्रांगण में

कला का नैसर्गिक निखार प्रकृति की सुरम्य आभा में ही उद्दीपित होता है। भोजपुर भी उसका अपवाद नहीं। भोपाल से ओबेदुल्लागंज के मार्ग पर मिसरोद से कुछ आगे चिकलोद की ओर एक शाखा फूटती है जिस पर लगभग ४ मील से कुछ अधिक जाने से पुनः दाहिने हाथ की ओर मुड़ने पर जो कच्चा मार्ग है, वही टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों से होता, गन्तव्य स्थान पर पहुंचता हुआ गौहरगंज की ओर चला जाता है। सचमुच हम लोग उत्साहपूर्वक भावना लिए चल रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो पहाड़ियों की गोद में, प्रकृति के रमणीय मुक्त वायुमण्डल में उछलते जा रहे हैं और चिरपोषित मनोकामना पूर्ण होने को है। मार्ग की विलक्षणता और अपरिचित पथिक को लक्ष्य भ्रष्ट करने वाली आड़ी टेढ़ी पगडण्डियां को पार करते हुए, बङ्गरसिया से कुछ आगे बढ़ने पर अनुभव हुआ कि हम अटवी में प्रवेश करेंगे कारण कि बङ्गरसिया से जो मार्ग जाता है वह यद्यपि विशाल वृक्षों से परिवेष्ठित तो नहीं है, किन्तु, झाड़ी इतनी अधिक हैं कि दिन को भी एकाकी जाने का साहस संचित करना होगा। बाईं ओर छोटी सी पहाड़ी और दाहिनी ओर कलियासोत जो वेत्रवती में जा मिलता है। कहीं कहीं जनशून्य एकान्त भ्रमित कर सकता था। ज्यों आगे बढ़े त्यों ही बाईं ओर की पहाड़ी की एक दीवार पर दृष्टि स्तम्भित हुई। गढ़े-गढ़ाये सुगठित प्रस्तर व्यवस्थित रूप से अवस्थित, जो भित्ति का भव्य रूप धारण किये थे। कहा जाता है कि इसे महाराजा भोज ने कलियासोत को बांधने के लिए बंधवाया था। शताब्दियों उपेक्षित रहने के पश्चात् आज भी उसकी स्थिति बहुत बिगड़ी नहीं है। बांध की दीवार की चौड़ाई २० फीट से कम न होगी। एक स्थान पर बांध को तोड़ने का विफल प्रयास भी परिलक्षित हुआ। जङ्गल से होता हुआ बांध कहीं कहीं मार्ग से इतना सटा है कि दिन को भी हिंस्र पशुओं का मिल जाना असम्भव नहीं। छोटी सघन झाड़ियां जंगल से कहीं अधिक भयप्रद प्रमाणित हो सकती हैं और इस मार्ग में कोई व्यावसायिक गांव न पड़ने से आवागमन भी सीमित ही है। बांध की दीवार भोजपुर के मन्दिर तक चली गई। इतना विस्तृत, सुदृढ़ और सुन्दर बांध तात्कालिक जानतिक सुविधाओं के प्रति शासन की जागरूकता का स्मरणीय प्रतीक है। बङ्गरसिया गांव इसी बांध की सुदृढ़ दीवार पर बसा जान पड़ा। बांध की व्यापक परिधि को देखते हुए ज्ञात होता है कि उन दिनों जल-स्थगन-कला कैसी उच्च सीमा तक पहुंच चुकी थी!

मौर्यकाल में भी अशोक द्वारा सिंचाई के लिये नहरों की व्यवस्था थी। मोहन-जोदरो तथा नालन्दा के खण्डहरों में बनी नालियां क्रमशः नगरनिर्माण-कला की विकासात्मक परम्परा की ओर संकेत करती हैं। प्रस्तुत बांध का जितना उन दिनों सांस्कृतिक महत्व था, उससे भी कहीं अधिक आज उसका कलात्मक गौरव है। प्रेक्षक को आश्चर्य होता है कि वर्षों तक अरक्षित, उपेक्षित रहने के बावजूद आज भी ऐसा लगता है कि इसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। कुछ परिवर्तन के साथ भविष्य में सिंचाई के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। बांध की दीवार के पीछे घने वन हैं। यद्यपि कीरतपुर से एक मील मैदान का कुछ भाग पड़ जाने से बांध तिरछा हो, भोजपुर के मन्दिर तक चला गया है। गाड़ीदान के दाहिनी ओर कलियासोत प्रवाहित है। कीरतपुर के समीप आने पर छोटी सी टेकड़ी पर बना भगवान् शङ्कर का मन्दिर दिखाई पड़ता है जो किसी समय सम्पूर्ण मालव का पुनीत श्रद्धा केन्द्र था। हजारों की धार्मिक भावना तो आज भी इसके साथ जुड़ी हुई है। निःसन्देह आध्यात्मिक साधना और लोक-चेतना को उद्दीपित करने वाला यह ध्वस्त कला-मन्दिर सहृदय प्रेक्षक और कलाकार को स्पन्दित करता है। पत्थरों की जाज्वल्यमान कलात्मक परम्परा सचमुच दूर से ही जन मन का उन्नयन कर, सौन्दर्यमूलक दृष्टि प्रदान करती है। दूर से ही इस खण्डहर के शिल्पियों के प्रति जो श्रद्धा उत्पन्न होती है, वह मन्दिर के निकट जाने पर, अविस्मरणीय भावना के रूप में परिवर्तित हो जाती है। कीरतपुर ग्राम सचमुच भोजपुर की उदात्त व उज्ज्वल कीर्ति का प्रतीक जान पड़ता है। निरछल कीर्ति का प्रकाश श्रद्धालु और बुद्धिजीवियों को विशिष्ट प्रकार की प्रेरणा देता है। हरे भरे लहलहाते खेत, पहाड़ी और वन में अठखेलियां लेती हुई प्रकृति भोजपुर के पार्थिव सौन्दर्य को सहज भाव से आत्मसात् करने को प्रेरित करती है। सहसा वाणी मुखरित हो उठती है। प्रकृति और संस्कृति के समन्वयात्मक संगम पर कला का यह क्षेत्र, मानव साधना का पुण्य धाम है। परिस्थितिजन्य यह निर्माण स्थायी प्रेरणा का ऐसा स्रोत है जिसके प्रवाह की प्रत्येक शाखा, ओज, बल और सौन्दर्य से परिप्लावित है। किसी समय सुमधुर घण्टानाद की प्रतिध्वनि प्रकृति के नीरव वातावरण में गुञ्जरित होती होगी किन्तु आज वहां मानव की ध्वनि भी कठिनता से ही सुनाई पड़ती है।

वेत्रवती[1] को चीरकर उन लघुतम चट्टानों पर चढ़ना पड़ता है जिसके सर्वोच्च शिखर पर लाखों व्यक्तियों का साधना, सौन्दर्य और श्रद्धा-स्थान सुनिर्मित है। सचमुच कलाकारों ने इसे खूब चुना है। शस्यश्यामला खेत की पृथ्वी किसी समय मानस का उन्नयन करती थी किन्तु, आज वह हृदय को अतीत की उज्ज्वल रेखाओं में समेट लेती है। भावावेश और ज्ञानचेतना का संचित पुंज प्रवाहित होने लगता है प्राकृतिक दृश्य, वाणी का मौन सहन नहीं कर सकता। भावना का झरना कविता के रूप में फूट पड़ता है। उद्दीपित रसवृत्ति खण्डित पत्थरों में चिर-

(१) श्री नन्दलाल दे रचित "एंश्यन्ट जाग्राफिकल डिक्शनरी" में साबरमती की एक शाखा वेत्रवती—वात्रक माना है—दूसरी भी माना है।

संचित मानवता की अनुभूति प्राप्त करता है।

उत्तरभारत का सोमनाथ

चट्टान पर चढ़ते ही छोटी-मोटी समाधियों पर दृष्टि केन्द्रित होती है, जो विगत महन्तों की बताई जाती हैं। समाधियों की परिधि व भव्य जगती (नींव के ऊपर का भाग) को देखकर मन्दिर की विशालता का आभास होता है। मन्दिर के ऊर्ध्व स्थान में जाने के दाहिनी ओर सती स्मारक और बाईं ओर कथित समाधियां हैं। जो सीढ़ियां ऊपर जाने की हैं वे सापेक्षतः अर्वाचीन हैं। ऊपर जाने पर दर्शक के हृदय पर कोई विशेष प्रभाव डाल सके, वैसा कुछ भी आकर्षण नहीं है। दोनों ओर अत्यन्त जर्जरित दीवार और दालानें आधुनिक ढंग की बना दी गई हैं तथा मध्य में सामान्य दो मन्दिर, कतिपय प्राचीन अवशेषों को लेकर, खड़े ही कर दिये हैं। भोजपुर की पर्याप्त कीर्ति सुनने के पश्चात् कल्पनाशील कलाकार के मन पर जैसा प्रथम प्रभाव पड़ना चाहिये, इन अर्वाचीन मन्दिरों से नहीं पड़ पाता। ये मन्दिर शंकरमन्दिर के सभा-मण्डप (प्रांगण) में बने हैं। इनके पृष्ठ भाग में अत्यन्त विशाल कलापूर्ण और भव्य प्रासाद के अवशेष हैं। इसकी रचना शैली, विशालता, सूक्ष्मकोरणी (पच्चीकारी) देखकर सहसा मुख से निकल पड़ता है कि सचमुच यह उत्तरभारत का सोमनाथ है। सोमनाथ में समुद्र का गर्जन गाम्भीर्य है तो भोजपुर में वेत्रवती का स्निग्ध माधुर्य। मध्यभारत का भगवान् भूतनाथ का भव्य भवन, भारतीय शिल्पभास्कर्य और मूर्तिकला का उत्तुंग प्रासाद, उत्कृष्ट स्थापत्य का चिरस्मरणीय साधना-निकेतन।

मुख्यमन्दिर

मन्दिर के गर्भगृह (मुख्य स्थान) और विशाल द्वार को देखने पर ज्ञात होता है कि जो स्थान वर्तमान में है, वह अपर्याप्त है। काल की कुटिलता से श्रृंगारचोरी (सर्वाग्र भाग) रंगमण्डप (नृत्य मण्डप) और सभामण्डप (प्रांगण) आदि बच नहीं पाये हैं। किन्तु शिल्पशास्त्र से परिचित कोई भी कलाकार मन्दिर के विराट रूप को देखकर अवश्य ही कल्पना करेगा कि यहां उपर्युक्त मण्डपों का रहना, शिल्पशास्त्र की दृष्टि से नितांत वाञ्छनीय था। ऐसा लगता है कि मन्दिर के साथ सभामण्डप की संयोजना भी उसी समय हो चुकी थी, कारण कि द्वार के आगे की भूमि पर बड़ी-बड़ी चट्टानों का फर्श है। इसमें चूने का उपयोग बहुत ही कम हुआ है एवं कहीं-कहीं पत्थरों में ताम्र-शलाकाएं (तांबे के खीलें) जोड़ने के चिन्ह बने हैं। वास्तुशास्त्रानुसार किसी भी सम्प्रदाय के मन्दिर में लोहे का प्रयोग सर्वथा वर्जित माना जाता है।

गर्भ-गृहका बाह्य भाग

गर्भगृह के द्वार पर ६३"-६३" की भगवान् शंकर की दो खड़ी मूर्तियां अंकित हैं। हाथ खण्डित और मुखमण्डल विकृत है, तथापि परिपुष्ट सौन्दर्य पूर्णतः उद्दीपित है। घुटने के

नीचे सुशोभित तूर्णालङ्कार (आभूषण विशेष) मूर्तिविज्ञान के तलस्पर्शी ज्ञान से अनभिज्ञ व्यक्ति को विष्णुमूर्ति मनवाने पर विवश कर सकता है, किन्तु, निकट पहुंचने पर दाईं मूर्ति के दाएं हाथ और बाईं मूर्ति के बाएं हाथ में सर्प-वलय, निम्न स्थान में नन्दी, परिकरान्तर्गत कार्तिकेय और पार्वती की मूर्तियां, कथित शंका को दूर कर देती हैं (चित्र संख्या १)। बाईं मूर्ति के दाहिने हाथ में त्रिशूल और बाएं में सर्प हैं। दाहिना और बायां एक-एक हाथ खण्डित है। शंकर का जटाजूट सचमुच बहुत ही आकर्षक बन पड़ा है। कानों में कुण्डल, गले में विशेष प्रकार के हंसुली, बाहु में बाजूबन्द या भुजबंद, कटि प्रदेश में कटिमेखला और कर में कङ्कण आदि आभूषणों से दोनों मूर्तियां विभूषित हैं। बाजूबन्द में लघुतम गोलाकृतियां रुद्राक्ष का संकेत करती हैं। ओंठ का निम्न भाग संकुचित व ठुड्डी की सिकुड़न स्निग्ध भावों का सुन्दर परिचय देती है। दोनों मूर्तियां सपरिकर हैं। खुदे हुए स्तम्भ व अन्य देवी मूर्तियों के हाथों में क्रमशः त्रिशूल सर्प, फरसा और बिजौरा (नीबू) हैं। मुख्य प्रतिमा के चरण के निकट नन्दी कृतज्ञ मुखमुद्रा में गर्दन ऊंची किये हुए है। मोदकों से भरा हुआ भाजन लिए एक व्यक्ति खड़ा है। यों तो मुखद्वार की उभय शंकर-मूर्तियों में पारस्परिक पर्याप्त साम्य है, किन्तु, आंशिक भिन्नत्व भी-जैसा कि दाहिनी खण्डित मूर्ति के स्कन्ध प्रदेश के ऊपर खण्डित खट्वाङ्ग (नरमुण्ड) का चिन्ह है। मुकुट में रुद्राक्ष की माला व अर्धचन्द्र उत्कीर्ण है। भारतीय चित्रकला से परिचित व्यक्ति अजन्ता की टेढ़ी-मेढ़ी कमलनालों (कमल की डण्डी) से शायद ही अनभिज्ञ होगा। प्रस्तुत मूर्ति के परिकर के सर्वोच्च भाग में जिन कमलाकृतियों का गुम्फन किया है, उनसे सहसा अजन्ता का स्मरण हो आता है। वहां तूलिका का चमत्कार है तो यहां छेनी का। दोनों मूर्तियां तोरणद्वार का अभिमान हैं।

महाकोसल और विन्ध्यप्रदेश के गर्भगृह तोरण में प्रायः उभय पार्श्व में गंगा और यमुना की मूर्तियां पाई जाती हैं। उसी प्रकार यहां भी हैं। किन्तु वाहन न होकर केवल कुम्भ कलश मात्र है। निम्न भाग में जो स्थान रिक्त है, वहां मकर की आकृति रही होगी (चित्र सं० २) नरमूर्ति भगवान् शंकर की ही है, कारण जिस सम्प्रदाय का मन्दिर हो उसी को या उसकी जीवन विषयक घटनाएं द्वार पर खुदवाने की प्रथा रही है। द्वार के (चित्र सं० ३) दाहिनी

(१) प्रत्येक सम्प्रदाय की मूर्ति का सपरिकर होना आवश्यक माना गया है। इसमें उसके विभिन्न स्वरूपों का आलेखन रहता है। तदंगीभूत विषयमूलक घटनाएं भी खुदवाने की प्रथा रही है। परिकर में सिंहासन, प्रभावली, परिचारक-परिचारिकाएं, उपासक-उपासिकाएं, गगन विचरण करते हुए व पुष्पमाला लिए देव-दम्पति, अधिष्ठाता और अधिष्ठात्री देवी आदि भाव उत्कीर्णित रहते हैं। कहीं-कहीं उभय पार्श्व में प्राकृतिक दृश्य के अतिरिक्त सिंह, हाथियों का खुदाव भी पाया जाता है! तात्पर्य स्वसम्प्रदायसम्बद्ध सभी भावों का प्रतिनिधित्व करने की रचना परिकर में होनी चाहिए। जैसे कि भगवान् शंकर की सपरिकर प्रतिमा में नन्दी, वाद्ययंत्र बजाते हुए भावाभिमुख नर नारीगण, कार्तिकेय, पार्वती, भूतप्रेत, गंगावतरण, गणेश आदि का खुदाव अनिवार्य है।

ओर का भाग कलाकार की दृष्टि से बहुत महत्व इसलिये रखता है कि इससे बाएं भाग का स्पष्टोकरण हो जाता है। अध्ययन की सुविधा और शिल्पशास्त्र के सैद्धांतिक तथ्यों को समझकर आत्मसात करने के लिये सर्वप्रथम हम द्वार के उभयपर्श्वीय विभक्त ६ भागों पर विचार करेंगे। प्रथम रेखा में केवल दो खांचे (रिक्त स्थान) संतुलित ढंग से उत्कीर्ण हैं एवं अभिलषित भाग में मागधीय (१) प्रभावयुक्त अर्द्धरेखा कृतियां उभरी हुई हैं। ये उनको दूसरी रेखा से सम्बद्ध हैं। तात्पर्य प्रथम भाग १६ इंच से अधिक चौड़ा और १७ इंच सापेक्षतया भीतर है। कलाकार ने वैषम्य में साम्य स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया है। दूसरी रेखा के नीचे कुम्भकलश लिए आभूषण युक्त गंगा अंकित है। तीसरा भाग जो बिल्कुल उभरा हुआ है, अर्थात यही तोरणद्वार का मुख्य भाग है, ६५ इंच चौड़ा और लगभग ४० इंच ऊंचा है। उच्च स्थानीय जामितीय रेखा के अतिरिक्त ६ से कुछ अधिक फीट ऊंचा शृंखला में बंधा हुआ घंटा है। इसी मुख्य भाग के निम्न स्थान में पूर्व वर्णित दाएं बाएं दो शिव मूर्तियां हैं। (चित्र सं० १) इसके निम्न भाग में एक खांचा है, जहां कोई मूर्ति रही होगी। द्वितीय भाग की नारी मूर्ति के समान यहां पर भी ७ फीट लगभग कोई मूर्ति होना चाहिए थी, क्योंकि ? फीट से कुछ अधिक लम्बा व १२ इंच से नीचे की ओर क्रमशः घटते हुए भाग का खांचा बना हुआ है, जो मूर्ति रखने के लिए ही बनाया जान पड़ता है। चतुर्थ, पंचम और षष्ठ भागों में क्रमशः तीसरे भाग की कुछ गहराई में तीन षोडशी प्रतिमाएं अंकित हैं। नारी मूर्तियों में स्पष्टतः ३ भाग बड़ी खूबी के साथ प्रदर्शित हैं। प्रथम का केश विन्यास मुखमुद्रा व विशेष ढङ्ग से ओठों का अङ्कन न केवल उसकी शालीनता के परिचायक हैं अपितु उसमें उठते हुए चिरयौवन की स्निग्ध आभा भी है। द्वितीय नारी मूर्ति सापेक्षतः दुर्बल तथा बाल भावों से सम्पन्न होते हुए भी चन्चल नहीं। तृतीय रचना गहराई में है। तीनों प्रतिमाएं चिन्ता, बाल्य और सौन्दर्य सम्पन्न भावों की कमनीय कृति हैं। बाईं ओर भी क्रमानुसार नारी मूर्तियां कलाकार की उच्चतम साधना का प्रदर्शन करती हैं। प्रत्येक प्रतिमा में भाव वैविध्य है, जो शृङ्गार जनित विकार की कल्पना नहीं होने देता। दोनों ओर के जो खांचे बचे हैं, वहां भी ८, ८ फीट की मूर्तियां जड़े जाने की संयोजना थी। द्वार के दोनों ओर के पत्थर बारूद से उड़ाने के चिन्ह हैं। यही कारण है कि बाईं ओर की जगती पर्याप्त खण्डित होगई है। मध्यप्रदेश और विन्ध्यप्रदेश के समान यहां भी तोरण द्वार में कुबेर की मूर्ति है। एक बात यहां और ध्यान देने की है कि यह प्रतिमा इस स्थान की मालूम नहीं होती। क्योंकि मूर्ति के ऊपर ४ इन्च से कुछ अधिक खांचे का भाग विशेष दीख पड़ता है। ज्ञात होता है कि अवश्य ही कोई बड़ी मूर्ति इस स्थान के लिये नियोजित होगी। बाद में इसे ही रख दिया गया।

---

(१) महराब (Arch) का अत्यन्त परिष्कृत रूप सर्वप्रथम नालन्दा की वेधशाला में दृष्टिगोचर होता है। दोनों ओर कलशवत रेखाएं व मध्यभागीय रेखाएं ज्योति के रूप में उठ खड़ी हो जाती हैं एवं निम्न भाग की खड़ी रेखाएं मुड़कर कहीं-कहीं मंगल मुखाकार जंचती हैं। ऐसा आकार मागधीय कलाकारों की दिव्य सूझ का परिणाम है। महाकोसल, विन्ध्य और मालव के कलाकारों ने इसे जामितीय रेखाओं द्वारा सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। कहीं-कहीं गवाक्षों के रूप में भी।

अन्य रिक्त स्थानों में सम्भव है शिखगण की योजना रखी गई हो तो आश्चर्य नहीं। बाएं चतुर्थ भाग में ऐसी ही चतुर्भुजी पुरुषाकृति हैं जो शौर्य भावना का प्रतीक हैं, जिस प्रकार पूर्व वर्णित घण्टाकृति युक्त स्तम्भ का संकेत किया है, ठीक वैसा ही भावसूचक स्तम्भ यहां भी होना चाहिये था। किन्तु तृतीय भाग असंयोजित ही रहा, (चित्र सं० ४) केवल पृष्ठ भूमि मात्र प्रदर्शित है, पर आगे की जगती, जो ६ भागों में विभक्त है, से स्पष्ट है कि यहां पर भी दाहिनी ओर के समान ही उत्कीर्ण प्रस्तरस्तम्भसंयोजना अपेक्षित थी। अस्तव्यस्त जमे हुये पत्थरों से ज्ञात होता है कि इस स्तम्भ के ऊपर बिजली गिर गई होगी। यहां स्मरणीय है कि मन्दिर के द्वार में व्यवहृत स्तम्भों के प्रस्तर कई भागों में विभक्त न होकर एक ही चट्टान से काटकर बनाये गए हैं। एवं उपर्युक्त पंक्तियों में पुनः पुनः रिक्त स्थान या खांचों का उल्लेख आया है, वहां यही समझना चाहिये कि इनकी उपयोगिता मूर्तियों को व्यवस्थित रूप से प्रयोजित करने की थी। इस कल्पना का मूल कारण यह है कि खांचों के ऊपर स्तम्भ से मूर्ति संयुक्तार्थ ताम्रशलाका खोंसने की रेखाएं स्पष्ट हैं और फँसी हुई मूर्तियों में भी वैसे ही चिन्ह स्पष्ट हैं। जो मूर्तियां खण्डित होगई हैं, उनसे भी खांचों का भाग स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। चिपकाई जाने वाली मूर्तियों का पृष्ठ भाग खूंटो के आकार का ऊपर उठा हुआ बना दिया जाता था, जैसा कि तत्रस्थ प्रतिमाओं के अवलोकन से प्रतिफलित होता है। चिपकी हुई मूर्तियां स्पष्टतः स्तम्भों से विभक्त हैं। खांचों की गहराई लगभग ६ फीट ६ इन्च है और गिरी हुई मूर्तियों का खूंटीनुमा भाग भी उतना ही उन्नत है। जगती का कुछ भाग बारूद से उड़ा दिया गया है। इस कुकृत्य के लिये निःसन्देह मानव की आर्थिक वासना या साम्प्रदायिकता ही उत्तरदायी है। तोरण में व्यवहृत पाषाण ललाई लिये हुये और पालिश कम होने तथा अधिक जल संयोग होते रहने से कहीं कहीं धब्बे पड़ गए हैं, जिनसे मूर्तियों का स्वाभाविक सौन्दर्य दब सा गया है।

गर्भगृह का प्रवेश द्वार

मन्दिर के गर्भ गृह के प्रवेश द्वार की चौड़ाई लगभग १५ फीट ४ इंच है। ऊंचाई अनुमानतः जगती मिलाकर ५० फीट है। दुर्गम दृश्य विशाल द्वार की महत्ता के अनुरूप सीढ़ियां न होकर बाद की निर्मित ज्ञात होती हैं। देहली के दोनों ओर द्वार के छोर पर कुछ मूर्तियां हैं। इनमें दो नारियां चंवर लिए खड़ी हैं। ये नूतन कलाकार की भावहीन कृति हैं। मोटे ओंठ, सामान्य आभूषण, आवश्यकता से अधिक बड़े चक्षु (जैसे १६वीं शती के ग्रन्थस्थ वाङमय में मिलते हैं) और भावहीन वदन मन्दिर की अपेक्षा अर्वाचीन भी प्रतीत हों तो आश्चर्य नहीं। किन्तु, इसे अर्वाचीन मान भी कैसे लें? कारण कि एक ही विशाल शिला में उत्कीर्ण हैं। जिसमें ११ और १२वीं शती के अन्य शिल्प क्लोपकरण भी सम्मिलित हैं। विशेषतः पशु स्तम्भ और शिखर का थर (पंक्तियां) तदनन्तर हथिनी पर सिंह अत्यन्त भावावेश में पिपासाशान्त्यर्थ प्रयत्नशील हैं। दोनों सिंह न केवल पृष्ठ भाग पर आरूढ़ ही हैं अपितु उनने भी अपने पिछले दोनों पैर मोड़कर मृगराज को अवकाश दिया है। उनका वदन भावोन्मेष व आनन्दोद्रेक से परिप्लावित है।

सिंहों का आवेश यों प्रतिभासित होता है कि वे पिछले चरण भूमि पर व अगले हथिनी के मजबूत पुट्ठे पर गड़ाए हैं। रसोपभोग की समाप्तप्राय: स्थिति से मस्तक उसकी पीठ पर झुक गया है। (चित्र संख्या ४) स्कंध प्रदेश का उन्नत भाग और पूंछ का पूरे बल से वलयांकित होना, रसोपभोग की अवस्था का प्रत्यक्ष प्रमाण है। हथिनी का मुंह मटकाना तो सचमुच आश्चर्यजनक है। कलाकार ने शान्त रस की इंद्रियजनित आनन्द की सुकुमार शृंगार भावधारा को अद्भुत क्षमता से खनन किया है। सीढ़ी के प्रथम चरण पर दो शंखाकृतियां बड़ी सुहावनी लग रही हैं।

गर्भगृहका अन्दरका भाग

भगवान् शंकर के मन्दिर प्रायः गहराई में ही देखे गए हैं। जितनी सीढ़ी चढ़ें, उतनी ही उतरना पड़ती हैं। ११-१२ वीं शती के समकालीन अन्य शिवमन्दिर भी इसी ढंग के पाए गए हैं। गर्भगृह की लम्बाई, चौड़ाई इस प्रकार है :—

१—चौड़ाई ४१'-४" ।

२—वेदी से दीवार का दक्षिण दिशा का अन्तर पूर्व से वेदी के मध्य का अन्तर— ६' —— ८" ।

३— उत्तर से दक्षिण का अन्तर १०' —— ६" ।

भारत में जहां कहीं शंकर मत का प्रचार रहा है व शासक भी शंकरोपासक रहे, वहां स्वसंप्रदायसम्बद्ध आराध्यदेवों के कलात्मक दृष्टि से प्रचुर मन्दिर बनवाए गए हैं, जिनका शैल्पिक महत्व सर्वविदित है। विराटकाय भव्य मन्दिरों का निर्माण व शैव संस्कृति का मौलिक उत्कर्ष तो अन्यत्र भी उपलब्ध हुआ है, पर भोजपुर का शिवलिंग व जलहरी विशालतापेक्षया सर्वोपरि है। इसके कुशल निर्माता के मस्तिष्क में अभूतपूर्व कृति निर्माण की महत्वाकांक्षा रही, जिससे सदैव के लिए वह अपना अक्षुण्ण स्मारक छोड़ गया। जलहरी तथा गर्भगृह की मौलिक विशेषताओं की ओर ध्यान आकृष्ट करना बिलकुल अनिवार्य है। जलहरी ग्यारहवीं शती की भारतीय शिल्प-स्थापत्य-कला की एक ऐसी अनुपम कृति है, जो सांस्कृतिक दृष्टि से आज भी मध्यभारत का मस्तक ऊंचा उठाये है।

भारत के द्वादशज्योतिर्लिङ्गों में भले ही भोजपुर का नाम न हो, किन्तु, इसका उज्ज्वल कृतित्व उनमें स्थान पाने की पूर्ण क्षमता रखता है। जलहरी का रचना प्रकार बिल्कुल स्वतन्त्र है। दो रेखाओं के बाद साढ़े तेतीस इंच का घंटाकृति सदृश ढलवां भाग है, जो कमलाकृति का स्थूल प्रतिनिधि है। इसके अनन्तर कुछ रेखाओं के बाद ४० इंच के अन्तर पर दूसरा भाग अर्द्ध-गोलाकार है। मध्य में गोलाई साढ़े तिरतालीस इंच है, १६ इंच की शिला जलहरी के द्वितीय भाग को टिकाये हुए है। उतने ही अन्तर के बाद जलहरी का तीसरा भाग आता है, जो प्रथम भाग के सर्वथा अनुरूप है, किन्तु, इसमें जो अन्तर है, वह शिल्प-स्थापत्यकलामर्मज्ञों के लिए समझने की वस्तु है। उभय पक्ष का व्यवधान सापेक्ष है। गुप्तकालीन मूर्ति कला में सिंहासन के स्थान पर

..मलाकृतियों का अङ्कन अनिवार्य समझा जाता था। उन्हीं का किंचित् परिवर्तित रूप मध्य भाग में प्रदर्शित है। गुप्तोत्तर उत्तरभारतीय मूर्ति-कला से जो प्रेरणा विन्ध्य, मालव और महाकोसल के कलाकारों ने ली और समयानुसार उसमें आँशिक परिवर्तन भी किये। सौंदर्य प्रदर्शन में भिन्नता होते हुए भी शैलीगत साम्य स्पष्ट है। जलहरी का तीसरा भाग विस्तृत होने के कारण पूर्णतः कमल का रूप तो धारण नहीं कर सका, किन्तु इसकी कमलाकृति सूचक सूक्ष्म रेखाओं को कुछ क्षणों के लिए प्रेक्षक मध्य भाग से पृथक् कर, शिलाओं के व्यवधान को भूल कर यदि प्रथम और तृतीय भाग को संयुक्त देखने का प्रयास करें तो पंक्तिगत कलामूलक मार्मिक तथ्य सुगमता से समझ में आ सकता है। जिस प्रकार प्राचीन मूर्तियों में विपरीत कमलाकृतियों के मध्यवर्ती भाग के भिन्नत्व प्रदर्शनार्थ सीधी रेखा बनाई जाती थी, जलहरी का मध्य भाग ठीक उसी रेखा का विराट् दिग्दर्शन है, और इस तरह सौंदर्य सृष्टि के साथ नूतन शैली का सूत्रपात हुआ, जो प्रान्तगत विशेषता का द्योतक एवं प्राचीन परम्परा का नवीन संस्करण है।

उत्तरभारतीय मूर्ति-निर्माणकला में इस तरह सिंहासन रचना का प्रकार तेरहवीं शती तक जारी रहा। किन्तु ज्यों ज्यों कलाकारों की सौंदर्याभिव्यंजक मौलिक क्षमता विलुप्त होती गई त्यों त्यों यह प्रकार सौंदर्यहीन अनुकरणमात्र रह गया। जलहरी सिंहासन है, जिस पर शिवलिंग प्रस्थापित है। ऐसी भीमकाय जलहरी केवल दो विशाल चट्टानों से मिल कर बनी है। जलहरी के निम्न भाग पर बारूद से उड़ाये जाने के चिन्ह हैं। सम्भव है सोमनाथ के शिवलिङ्ग से निकले धन की कहानी ने किसी अर्थ लोलुप को ऐसा करने को विवश किया हो। शिवलिङ्ग की ऊंचाई ७ फीट ४ इंच है और गोलाई १७ फीट ४ इंच। मुख्य शिवलिङ्ग से ऊपर का मध्य भाग ४ फीट साढ़े आठ इंच है। (चित्र सं० ६) उपर्युक्त महान् शिवलिङ्ग को ही वेदिका का रूप देकर ४ फीट ७ इंच लम्बा और १० इंच चौड़ा शिवलिङ्ग उत्कीर्णित है। लगता है कि मुख्य लिङ्ग का पूजन बिना किसी आधार के असंभव है और आधार की कोई सम्भावना भी नहीं। अतः पूजा के लिए लघु लिङ्ग की व्यवस्था संयोजित है। उत्तर की ओर का भाग, ऊपर से पत्थर गिर जाने के कारण, खण्डित हो गया है। विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि शिवलिङ्ग पर इतनी सुन्दर चमक है कि मौर्यकालीन स्निग्धत्व का आभास होने लगता है। मौर्य युग के बाद परमारों के समय में ही विशेष रूप से पत्थरों पर पालिश करने का प्रचार हुआ। मुख्य शिवलिङ्ग तक पहुंचने के लिए उत्तर की ओर आधुनिक सीढ़ियां बनी हैं। कहा जाता है कि पहिले सीढ़ियां नहीं थी किन्तु बाद में बनवाई गई। विचार करने पर ज्ञात होता है कि जब इस भव्य कलाकृति का सृजन हुआ तब वह अपूज्य कैसे रह सकती है? सम्भव है कि ऊपर जाने का लघुतम मार्ग रहा होगा परन्तु भक्तों ने अपनी सुविधा के लिए उसे अधिक विस्तृत कर दिया हो।

दीवारें

तानों ओर सुदृढ़ पत्थरों की दीवारें बनी हैं। चारों दिशाओं में चार स्तम्भों के अतिरिक्त प्रत्येक दीवार में दो-दो, इस प्रकार १२ सुन्दर कलापूर्ण स्तम्भ हैं। प्रत्येक स्तम्भ के ऊपर दोनों

ओर कुर्सीनुमा भाग हैं (चित्र नं० ६) जो शिलाओं को थामे हुए हैं और उसी का दूसरा भाग टोंड़ों (बारजों) को थाम लेता है, इस प्रकार शिलाएं टिकी हुई हैं, जो नीचे से ऊपर तक कहीं खुदाई, कहीं ज्यामितीय रेखाएं और कहीं जागतीक रूप के द्योतक हैं। ८-८ फीट से कम तो स्तम्भ को शायद ही कोई शिला रही हो। स्तम्भ व दीवारों से संयुक्त चारों ओर हारीजान्टल पिलर्स भी विभिन्न आकृतियों से अलंकृत हैं। प्रत्येक स्तम्भ का सर्वोच्च भाग कमलाकृति का परिचायक है। दीवार के तीनों भागों में कुर्सी के समान निकले हुए भाग केवल भित्तिवर्तीय शिला स्तम्भनार्थ हो हैं। इन्हीं में पूर्व, पश्चिम और उत्तराभिमुख योगिनी मूर्त्तियां प्रतिष्ठित हैं। पूर्वाभिमुख दो मूर्तियां हैं, जो सुन्दर और सुकुमार भावनाओं का अप्रतिम प्रतीक हैं। योगिनी मूर्ति मैंने इसलिए कहा कि उनके आयुध (शस्त्रादि) और मुद्राएं क्रमशः वारुणी और कापाली की हैं, जो महाकोसल में भी पाई जाती हैं। सौभाग्य से उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित होने से अल्पखण्डित हैं। अनुपम भावप्रवणता प्रेक्षणीय हैं। पश्चिम व उत्तराभिमुख मूर्ति को छोड़कर पूर्व की दोनों मूर्तियां अखण्डित हैं। बड़े ही परिताप के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि उत्तरदिशा-स्थित प्रतिमा के मस्तक पर बहुत बड़ी पाषाण-शिला छत से गिरते-गिरते अटक गई है, जो कभी भी इस सौंदर्यमूलक और प्रभावोत्पादक कृति को विनष्ट कर सकती है। कुर्सी के अतिरिक्त छूटे हुए चार रिक्त स्थान से कल्पना होती है कि पूर्व सूचित स्थानानुसार यहां पर भी मूर्तियां बिठाई जाने वाली थीं क्योंकि वेदिका बनी हुई है।

दक्षिण की दीवार पर निर्मित स्थान इस प्रकार है। अग्रभाग में निकले हुए पत्थर, तदुपरि अस्त-व्यस्त पत्थरों से दोनों ओर कीचक हैं और उस पर एक सिंहासन के समान ६ फीट ३ इन्च एक शिला है। सम्पूर्ण दीवार की उभरी हुई और स्वतन्त्र कृति प्रतिमा स्थापनार्थ ही बनवाई गई होगी।

मधुछत्र

इतने विवेचन के बाद अब हम मन्दिर के उस भाग को लेते हैं जो कला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ भाग है। भक्तिसिक्त-हृदय में जितनी श्रद्धा आराध्य के प्रति होती है, कलाकार का आकर्षण उससे कहीं नैसर्गिक आकृतियों के प्रति रहता है। तात्पर्य मन्दिर के उस उपभाग से है, जहां विविध भावसम्पन्न कोमल रेखाओं द्वारा आंतरिक जीवन शोधक सात्विक वृत्तियों का चित्रण हुआ है। स्थूल रेखाएं भले ही आराध्य या तज्जीवनमूलक सम्बन्ध से परे हों अपितु वे अखण्ड मानवता के दिव्य व पारमार्थिक चिंतन का एक ऐसा सफल और भव्य रूप है, जो उस युग के भौतिक साधन द्वारा आध्यात्मिक सौंदर्य का प्रतिनिधित्व करता है। मौन वाणी एवं अल्प आधार में ही तो सौंदर्य का समुचित उद्दीपन होता है। सचमुच शैव संस्कृति के मन्दिरों के अद्यावधि प्रेक्षित मधुछत्रों में यह प्रान्तापेक्षया अभूतपूर्व ही है। मधुछत्र पर विचार करने से पूर्व उसके आधार स्तम्भों पर ध्यान देना वांछनीय है। जिस प्रकार दीवारों में स्तम्भ हैं, उसी प्रकार आलोच्य मधुछत्र भी विशाल चार स्तम्भों पर आधृत है। स्तम्भों की विशालता का अनुमान

प्राथमिक परिधि से ही हो सकता है, (चित्र नं० ६) जिसका व्यास ११ फीट ६ इन्च है। तदनन्तर अष्टकोण रेखाकृतियां हैं। ऊपर का भाग १६ कोणों में विभक्त होकर कुछ गोलाई के बाद उभरा हुआ हिस्सा अष्टकोण में परिवर्तित हो गया है। इस पर १६ आकृतियां पुनः ६ से कुछ अधिक भाग जिसकी गोलाई परिधि के समान ही समझनी चाहिये। बिलकुल पंखुड़ी रहित कमल के समान बना हुआ ऊर्ध्व भाग बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। ऊपर चारों ओर निकले हुए भागों के आधार पर शिलाएं टिकी हैं। इसी प्रकार चारों स्तम्भ चार दिशा में हैं, जिन पर ४ शिलाएं रेखांकित हैं। प्रत्येक स्तम्भ के मध्य भाग में उभरा हुआ कुछ हिस्सा इसलिए बनाया गया जान पड़ता है कि वहां नृत्य के गतिशील भावों को शिल्प द्वारा स्थिति-शील व्यक्त करने के हेतु संगीतोपकरण युक्त पुत्तलिकाएं (पुतलियां) या गन्धर्व प्रतिमाएं रखी जाती जैसा कि ग्यारहवीं व बारहवीं शताब्दी के एवं इतः पूर्व के पुरातन मन्दिरों में बहुधा पाई जाती हैं। इस प्रकार की मूर्तियों का महत्व जितना प्रतिमा विज्ञान एवं तात्कालिक समाज-शास्त्रीय दृष्टिकोण से है, उससे भी कहीं अधिक महत्व भारतीय संगीत एवं वाद्यन्त्रों की क्रांति-कारी परम्परा की दृष्टि से है। संगीत के व्यापक वाद्ययन्त्रों का प्रांतीय परिस्थिति के अनुसार विकसित या भ्रष्ट रूप का वास्तविक परिचय ऐसे ही साधनामय स्थानों में उपलब्ध मूर्तियों से प्राप्त होता है। कलापरक सामाजिक चेतना का मूर्तरूप इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि भारतीय अध्यात्मवाद वैयक्तिक जीवन से सुसम्बद्ध होते हुए भी समाजमूलक परम्परा का जनक है।

वर्णित स्तम्भ के सर्वोच्च भाग में चतुर्दिक किनारे निकले हैं। उनमें प्रत्येक के मध्यवर्ती कोण पर मूर्तियाँ स्थापित हैं और वे स्पष्टतः ताम्रशलाकाओं के द्वारा जोड़ी गई हैं। चारों में लगी हुई ताम्रशलाकाएं निम्न भाग से दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम पूर्व की मूर्ति जिसमें शंकर और पार्वती हैं, इस प्रकार की मूर्तियों का विन्ध्यप्रदेश में बहुत प्रचार रहा है। सर्वोच्च कला-कृति रीवां में व्यंकट विद्यासदन के सम्मुख एक छप्पर में खड़ी है, जो कलचुरियुगीन मूर्तिकला की सर्वश्रेष्ठ परिणति है। इसके दाएं बाएं कोणों में भी भगवान शंकर के जीवन से सम्बद्ध विशिष्ट भावों को व्यक्त करने वाली प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार तीनों दिशाओं में गवाक्ष स्थित तीन तीन मूर्तियां अर्थात सब मिलाकर चारों स्तम्भों में १२ मूर्तियां अंकित हैं। बिना किसी अत्युक्ति के कहना चाहिये कि ये कलाकार की दीर्घकालव्यापी साधना की श्रेष्ठतम कृतियां हैं। लगता है कि ये एक ही कलाकार के द्वारा या उसके निरीक्षण में तैयार हुई हों। शंकर और पार्वती के आयुध, धतूर-पुष्प, तूणालंकार अन्य आभूषणों के अतिरिक्त सौन्दर्य मूर्त तो हैं ही, साथ ही रसोद्रेकावस्था का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और प्रभाव जो मुखमंडल पर होना चाहिये वह इतना स्पष्ट, प्रेरक, मर्मवेधी और हृदय द्रावक है जो लेखनी का विषय हो ही नहीं सकता। रस से परिप्लावित आनन्दोन्मत्त पार्वती का मुख एवं शंकर के वात्सल्य का स्नेहासिक्त प्रभाव, हृदयहीन व्यक्ति को भी सहृदय बना देता है। इस प्रकार की मूर्ति शृंगारिक भावना का दृष्टा के हृदय में तनिक भी विकार उत्पन्न नहीं करती। भारतीय कलाकारों की यही मौलिक विशेषता है। वे मर्यादित शृंगार का ऐसा सुन्दर व सात्विक संस्करण उपस्थित करते हैं कि रस की परिपक्व अवस्था भी इन्द्रियों को

वासनामय उत्तेजना की ओर लक्षित, नहीं करती। पार्वती के कर का दर्पण, भगवान् शंकर का त्रिशूल, प्रकृति का तादृश स्वरूप उपस्थित कर देते हैं। ये सब मूर्तियाँ जमीन से ४० फीट से कम ऊंची नहीं हैं। ये रक्त पाषाण पर उत्कीर्णत हैं, सपरिकर हैं और अत्यल्प खण्डित भी।

भारतीय मन्दिरों में गर्भगृह का शिखर महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मधुछत्र शिखर का आन्तरिक भाग है। बारहवीं शती के बाद सभामण्डप में भी सुन्दर मधुछत्र का अङ्कन किया जाता था। विशेषकर विन्ध्य, महाकोसल और मालव मन्दिरों में तो इसका तक्षण अनिवार्य था। तीनों में कलात्मक साम्य और रेखागत भाववैविध्य प्रतिस्पर्धा की वस्तु है। शिल्प विषयक, ग्रन्थस्थ वाङ्मय से सिद्ध है कि प्रासाद या गृह का कोई भी भाग अनुत्कीर्ण न रहने देना चाहिये। अपितु प्राकृतिक और भावविवर्धक रेखाओं से अंकित प्रदेश परम मांगलिक माना गया है। शिल्प का यह निर्देश भोजपुर के मधुछत्र पर पूर्णतया चरितार्थ होता है। इसका व्यास अनुमानतः ५० फीट लगभग होगा और उतना ही पृथ्वी से ऊंचा भी। सक्षम कलाकारों ने जितना परिश्रम मधुछत्र की सूक्ष्म, स्पष्ट और बलिष्ठ रेखाओं के निर्माण में किया होगा, इसका अनुमान पांच मिनिट सिर ऊंचा कर देखने से हो सकता है। जिसके निरीक्षणमात्र से मस्तिष्क की ग्रन्थियां खिचने लगें और दृष्टि स्तम्भित होने लगे तो भला उसके निर्माता को मनसा-कर्मणा कितना श्रम करना पड़ा होगा। सचमुच यह विचारणीय है। हमारी हृदयहीन उपेक्षा के कारण मधुछत्र भी पूर्णोपलब्ध नहीं है। पर जितना भी भाग अवशिष्ट है, वह उसकी महानता व कलात्मक स्वरूप को लिए हुए है। कलाकार की तीक्ष्ण प्रतिभा का सफल प्रतिनिधित्व करने की योग्यता उसमें सन्निहित है। प्रायः भारतीय कला समालोचकों में मतस्थिर सा हो गया है कि ज्यामिति की रेखाओं का समुचित विकास मुगलकालिक मस्जिदों में हो हुआ है। चकाचौंध करने वाली उनकी जालियां सचमुच रेखाकृतियों का अद्भुत संग्रह है किन्तु इतः पूर्व वे रेखाएं अविकसित थीं, ऐसा मानना न्याय संगत नहीं जान पड़ता। हां, मूर्तियां स्तम्भ या तथाकथित भारतीय कलोपकरणों में ऐसी रेखाओं का ललित अङ्कन पाया जाता है। किन्तु उन सभी में भोजपुर के इस मधुछत्र की रेखाओं का अपना ऐसा विशिष्ट स्थान है कि इसकी तुलना कुछ अंशों में पश्चिम भारत के विख्यात कलातीर्थ आबू के मधुछत्र से की जा सकती है। महाकोसल और विन्ध्यप्रदेश के मन्दिरों व देवकुलिकाओं में एवं गोंड़ काल के धर्मायतनों में मधुछत्र का दीवार और शिखर में अङ्कन तो उपलब्ध होता है किन्तु वहां रेखा समूह न होकर कमल मात्र ही बना दिया जाता रहा जो स्पष्टतः बारहवीं शती के मधुछत्रमूलक कलाकृतियों का ह्रासोन्मुखी अनुकरणमात्र है।

भोजपुर का मधुछत्र ग्यारहवीं बारहवीं शती का उत्कृष्टतम रेखांकनों का मूल्यवान् भण्डार है जो भिन्न २ कलियों द्वारा एकत्र हो विशाल स्तम्भों पर आधृत, चार चट्टानों पर टिका है। उसी के सहारे गुंबज की आठ कलियां (गोलाकार टुकड़े) सटी हैं। अनुमानतः सात सात फीट से शायद ही कोई कम हो। इन ८ कलियों में चतुष्कोण वाले अंश विस्तृत हैं। सूक्ष्मप्रेक्षण से अवगत होता है कि सूचित शैव मूर्तियों के मस्तक की कलियों में खट्वाङ्ग (नरमुण्ड) पंक्तियां खचित हैं। दूसरी कली में कमलनाल का मुड़ाव अजन्ता और सित्तन्नवासल (पदूकोटा स्टेट मद्रास) के कलाकारों का स्मरण कराता है। तृतीय कली में कथित रेखाओं का अनुकरण नाविन्यात्मक है। इस प्रकार

छोटे मोटे नौ प्रस्तर हमारे सम्मुख हैं। धन्य है वह कलाकार जिसने रेखा-समूह एक स्थान पर उत्कीर्ण किया, उसकी पुनरावृत्ति सारे गुम्बज में कहीं भी नहीं होने दी। हारीजांटल पिलर्स से वर्तमान मधुछत्र की ऊंचाई नापी जाय तो शायद ६ फीट से कुछ अधिक ही होगी। ऊपर के भाग में भी कम से कम पौने दो दो फीट की दो कलियां अवश्य ही रही होंगी क्योंकि एक अस्तव्यस्त उत्तरीय भाग में पड़ी हुई हैं। तदनन्तर मध्य में एक ही शिला पर अंकित गोल कमलाकृति रही हो तो आश्चर्य नहीं जैसा कि निकटवर्ती महाकोसल के मन्दिरों में पाई गई हैं। मेरी इस कल्पना के पीछे एक तथ्य है, और वह यह है कि मुख्य मन्दिर के द्वार के निकट एक सती स्मारक के पास कमलाकृति युक्त सर्वथा अखंडित प्रस्तर पड़ा है (चित्र नं० ७)। वह ठीक कलियों के शेष भाग का आच्छादन बन सकता है।

मधुछत्र में अपने अपने संप्रदाय के महान् पुरुषों की या नृत्य मुद्राओं को व्यक्त करने वाली भावसूचक प्रतिमाओं का अङ्कन दृष्टिगोचर होता है। यहां भी बहुत ही सुन्दर शंकर पार्वती की मूर्तियां विद्यमान हैं। वे सजग और उद्दीपित सौन्दय की केन्द्रस्थली हैं। मधुछत्रकी प्राणयुक्त भावना यथार्थवादी दृष्टिकोण का अविस्मरणीय प्रतीक है। चूंकि उसमें इतने मधुछत्ते लगे हैं कि धूम्र का आभास पाते ही भक्तगण पर भीषण आक्रमण होने लगता है, इन मधुमक्खियों की कृपा से दैनिक पूजापाठ व धूपदान से भी शिवलिंग वंचित हैं। मधुछत्र की प्रत्येक कला के नीचे अधोमुखी मूर्तियां हैं। इनका सम्बन्ध पाशुपत मत से है जो शैव मत का एक संप्रदाय है। इनमें लकुटीश (१) की मूर्ति को नहीं भूल सकता, जो न केवल सौन्दर्य सम्पन्न ही हैं किन्तु कलाकारों ने जिस सहृदयता से इन्हें अंकित किया है, उससे स्पष्ट है कि कलाकार सौन्दर्य को रूपदान देते समय परिपक्व मस्तिष्क प्रसूत तत्वज्ञान को विस्मृत न कर सका। भावगांभीर्य व स्मित वदन अविस्मरणीय हैं। हाथ में लकुट और पुष्प थामे हुए हैं। एक मूर्ति बांसुरी बजा रही रही है जो संगीत का समा बांध देता है, जैसा कि उनकी तन्मयतामूलक मुखमुद्रा से परिलक्षित होता है। एक प्रतिमा तलवार लिए है। शेष मधुमक्षिकाओं से परिवेष्टित हैं। सभी के गले में रुद्राक्ष की मालाएं हैं। प्रभावली भी भोजपुर में प्राप्त समस्त मूर्तियों से पर्याप्त साम्य रखती है। उनकी प्रभावलियां सचमुच परमार कला ज्वलन्त प्रतीक हैं।

निर्माता

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि भगवान् शंकर का यह भव्य प्रासाद और ऐतिह्य-

---

(१) लकुटीश पाशुपत मत के प्रवर्तक आचार्य थे। सन् ७७२ के शिलालेख में लिखा है कि भड़ौंच में विष्णु ने भृगु को शाप दिया तो भृगु मुनि ने शिव की आराधना कर उनको प्रसन्न किया। इस पर उनके सन्मुख हाथ में लकुट(डंडा) लिए शिव का कायावतार हुआ। हाथ में लकुट लिए होने से यह लकुटीश या लकुलीश कहलाए। कायावतार (बड़ौदा राज्यान्तर्गत) कारवान में हुआ। मथुरा संग्रहालय के सन् ३८० के शैव लेख से विदित होता है कि लकुलीश परम्परा के ११वें आचार्य उदिताचार्य थे। २५ वर्ष की एक पीढ़ी मान ली जाय तो लकुलीश का काल ई० १०५ से १३० पड़ता है।

सिक बांध किस की कृति है ?, क्योंकि इसके निर्माणकाल पर स्पष्ट प्रकाश पड़ सके, ऐसा लेख मन्दिर में कहीं उपलब्ध नहीं एवं तात्कालिक शिला व ताम्रलिपियों और ग्रन्थस्थ वाङ्मय में भी इसका संकेत नहीं मिलता। इन बातों के बावजूद भी काल निर्णय की पर्याप्त सामग्री मन्दिर में विद्यमान है। समसामयिक सांस्कृतिक तथ्य भी उपलब्ध हैं। मूर्तिनिर्माण कलान्तर्गत सत्यमूलक तथ्यों से जिनका सोदाहरण विवेचन आगे किया जा रहा है, बिल्कुल स्पष्ट है कि यह ११ वीं शती के बाद का हो ही नहीं सकता। इतिहास इस बात का साक्षी है कि ११वीं शती में भोजपुर के समीपवर्ती शासक चन्देल, कलचुरि और परमार वंश के रहे। ये तीनों परम माहेश्वर थे, जैसा कि उनकी प्रशस्तियों से फलित होता है। चन्देल और कलचुरियों के शासन में भोजपुर सम्मिलित नहीं था। तात्कालिक लेख उपयुक्त पंक्तिगत रहस्य को स्पष्ट कर देते हैं। अब प्रश्न रह जाता है कि केवल परमारों(१) का। ११वीं शती के प्रथम चरण में महाराजा भोज मालवा के शासक थे, भोजपुर ग्राम उनकी ओर ऐतिहासिक संकेत करता है। भोज का सम्बन्ध इस मन्दिर के निर्माण से अवश्य ही रहा है। कलचुरि गांगेय लगभग (१०१९ से १०४१) और परमार भोज का संघर्ष विख्यात है। दोनों की शासन सीमाएं सटी थीं।

महाराजा भोज

महाराजा भोज मध्यकालीन भारतीय राजाओं में सफल शासक थे। उन्होंने अपने शासनकाल में भारतीय विद्याओं के विकास पर बहुत ध्यान दिया। वे स्वयं निष्णात विद्वान् एवं उच्चकोटि के कलापारखी थे। उनकी सभा में ज्योतिष, काव्य, धर्मशास्त्र, दर्शन और अलंकार आदि गंभीर विषयों पर निरन्तर चर्चा होती थी और विद्वानों का यथोचित सम्मान। सुप्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य के पिता भास्कर भट्ट भोज द्वारा ही विद्यापति की उपाधि से विभूषित किए गए थे। भोज की सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय "सरस्वती कंठाभरण", "राजमार्तण्ड", "राजमृगांककरण", "विद्वज्जनवल्लभ", समराङ्गण आदि ग्रन्थों से मिलता है। "कीर्ति कौमुदी", "सुकृत संकीर्तन", "प्रबन्ध चिन्तामणि", "भोज प्रबन्ध", "नवसाहसांक चरित" आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों से भोज के जीवन पर बहुमुखी प्रकाश है। यों तो परमार वंश की राजधानी उज्जयिनी थी, किन्तु, गुजरात के चालुक्यों द्वारा बार-बार आक्रमण किये जाने के कारण उसे धारा में परिवर्तित करने पर विवश होना पड़ा था। धारा का उल्लेख ७ वीं शती के लेखों में आता है। अतः यह कहना सच नहीं कि धारा को परमारों ने ही बसाया, पर, हाँ, भोज के कारण भारतीय संस्कृति और सभ्यता के इतिहास में धारा-नगरी अमर अवश्य हो गई। उज्जयिनी के महाकालेश्वर के मठाधिपति पाशुपताचार्य थे, अतः, भोज भी

---

(१) १३ वीं शताब्दी तक परमारों का शासन निश्चित रूप से नर्मदापुर (होशंगाबाद) तक फैला हुआ था जैसाकि उदयवर्मदेव के १२५६ के एक ताम्रपत्र से सिद्ध होता है। यह ताम्रपत्र मुझे अपनी भोपाल यात्रा में प्राप्त हुआ।

पाशुपत-सम्प्रदाय का अनुयायी था। उस समय तांत्रिक कापालिकों का मालव (१) में प्राबल्य था। अपनी संस्कृति के प्रति तीव्र अनुराग और चिरसंचित कलात्मक वृत्ति के फलस्वरूप उसने भगवान् शंकर के प्रति भक्ति ज्ञापनार्थ ११ ज्योतिर्लिङ्गों का जीर्णोद्धार करवाया था, जैसा कि उदयपुर (ग्वालियर) प्रशस्ति से अवगत होता है। यह स्मरणीय है कि पश्चिम भारत का सोमनाथ ११ वीं शती में पाशुपत मत का प्रचण्ड केन्द्र था। इसी के अन्तर्गत उज्जयिनी का मठ भी रहा। इसी से भोज का इसके प्रति आकर्षण होना बिल्कुल स्वाभाविक था। महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ पर आक्रमण किये जाने के कुछ वर्ष पूर्व ही भोज ने वहां काष्ठ (लकड़ी) का मन्दिर बनवाया था। जब महमूद ने मन्दिर पर प्रहार किया, तब भोज के हृदय में मार्मिक वेदना उठी। फलस्वरूप महमूद पर आक्रमण करने के लिये उद्यत हुआ, जिसकी सूचना मात्र से गजनवी राजस्थान छोड़ सिंध के रास्ते भाग निकला। सोमनाथ पर महमूद के जघन्य आक्रमण से भारत की सांस्कृतिक आत्मा तिलमिला उठी और समूचे भारत के शैव नरेश चौंक पड़े। इसी की प्रतिक्रिया से शैव संस्कृति के स्वरूप को शिल्प व मूर्तिकला द्वारा उल्लेखनीय बल मिला। कुमारपाल (विक्रम सम्वत् ११९९–१२३०) ने सोमनाथ का जीर्णोद्धार करवाया, जिससे देशव्यापी शैव मतावलम्बियों का प्रेरणाशील सांस्कृतिक व्यक्तित्व पुनः जाग उठा। भोजपुर के इस भव्य प्रासाद का निर्माण महाराजा भोज द्वारा सोमनाथ की चुनौती के उत्तर में ही हुआ था, यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है।

प्रसंगतः एक बात का उल्लेख अत्यावश्यक है कि भोज के समय मालव व तत्समीपवर्ती प्रदेशों में पाशुपत सम्प्रदाय का प्राधान्य था। उज्जयिनी के अतिरिक्त रणोद (ग्वालियर) में भी दो विशाल शैव मठ थे, जहां के मठाधिपति पुरन्दर प्रधान परमतांत्रिक (तंत्र मतानुयायी) थे। अवन्ति वर्मा इनसे बहुत प्रभावित हुआ। यहां पर यह स्मरण रखना चाहिये कि भेड़ाघाट (जबलपुर से १४ मील) स्थित गोलकी मठ के प्रथम आचार्य सद्भावशम्भु इन्हीं के शिष्य थे। केयूरवर्ष द्वारा महाकोसल बुलवाए गए। इससे मालव-महाकोसल सांस्कृतिक सम्बन्ध पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। तंत्र परम्परा मान्य जो योगिनी मूर्तियों में मालव-महाकोसल साम्य दृष्टि-गोचर होता है, उसका एकमात्र कारण यह है कि चाहे शासन की दृष्टि से भले ही उभयराज्यीय संघर्ष चलता हो, किन्तु संस्कृतिमूलक चिन्तन अभिन्न था। भोज को पाशुपत मतानुयायी सिद्ध करने का केवल उपर्युक्त कारण ही पर्याप्त नहीं है अपितु भोजपुर मन्दिर में भगवान लकुलीश की जो मूर्तियां मधुच्छत्र में स्थापित हैं, उनसे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि अंतर्प्रान्तीय एतद्विषयक मन्दिर बहुत कम बच पाए हैं, किंतु भोजपुर का मन्दिर, भले ही आज अरक्षित उपेक्षित स्थिति में हो, पर ११ वीं शताब्दी की शैव संस्कृति एवं मूर्तिकला का सफल प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार यह प्रमाणित हो चुका है कि निश्चित रूप से यह भोजकालीन कृति है। अब हम मूर्तिविधान के प्रकाश में काल निर्णयात्मक तथ्यों पर

(१) शंकराचार्य के समय कापालिकों का प्रभुत्व भारत में व्याप्त था। 'शंकर दिग्विजय' 'मालती माधव' और 'दशकुमार' आदि ग्रन्थों में कापालिकों का बीभत्स वर्णन है। भोजकालीन मालव कापालिक भावना का विराट केन्द्र था। भोज के जीवन में भी एक कापालिक का प्रसंग आता है।

संक्षेप में विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। गुप्तों के बाद भारतीय मध्यकालीन शिल्पस्थापत्य-कला का इतिहास कम रोचक नहीं। यद्यपि ११वीं शती के बाद भारत को आक्रमणात्मक स्थिति का सामना करना पड़ा, तथापि चिरसंचित कला परम्परा के प्रति जागरूकता में अंतर नहीं पड़ सका। शासक और शासितों ने अपने आराध्यों के विभिन्न स्वरूपों को अंतर के अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने में कमी नहीं की, बल्कि, विविध स्वरूपों पर विशेष ध्यान देकर वात्सल्य की परिपक्व स्थिति का सुपरिचय दिया। हमारी मर्यादा यहां सीमित है। भोजपुर की मूर्तिकला पर विचार करते हुए हम चन्देल और कलचुरि कलाकृतियों की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि प्रत्येक ध्वस्त कलाकृति की प्रान्तगत विशेषताएं रहने के बावजूद भी उत्तरभारतीय टेकनीक स्पष्ट परिलक्षित होती है।

काल निर्णय में शिल्प-कला और मूर्तिकला का महत्व सर्वविदित है। जिस प्रकार समान संस्कृत्याश्रित तथ्य से निकटवर्ती भूभाग प्रभावित होता है, उसी प्रकार कलात्मक उपकरणों का प्रभाव भी पड़ता है। अतः भोजपुर की मूर्तिकला पर सर्वांगपूर्ण विचार करने के पूर्व प्रान्तगत पारस्परिक कलामूलक उपकरणों को देख लिया जाय। विन्ध्य, महाकोसल और मालव के शासक परम शैव थे। अतएव, समान संस्कृति के कारण पर्याप्त आदान प्रदान हुआ है। महाकोसल में ११ वीं शती की कुछ ऐसी लेखयुक्त शिल्पकृतियां उपलब्ध हुई हैं, जिनसे भोजपुर की मूर्तियों के कालनिर्णय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इन पंक्तियों का लेखक विन्ध्य तथा महाकोशल के कुछ खण्डहरों को देख चुका है। अतः, निस्संकोच कहा जा सकता है कि इन तीनों पर उत्तरभारतीय प्रभाव स्पष्ट है। भोजपुर के मंदिर में स्थापित मूर्तियों के परिकर में जिन स्तम्भों का व्यवहार हुआ है, उन्हीं का प्रयोग शेष प्रान्तीय कलाकारों ने भी किया। बरेठा, त्रिपुरी, बिलहरी और जसो (नागोद से ८ मील) के मंदिर और वहां की मूर्तियां उदाहरण स्वरूप रखी जा सकती हैं। गवाक्ष पर जो मागधीय प्रभाव है, वह भोजपुर में भी विद्यमान है। प्रत्येक मूर्ति के सिंहासन में ज्यामितीय रेखायें हैं। बरहटा और पनागर के खण्डहरों में जैन प्रतिमाओं के निम्न भागों में व शिखर के थरों (स्तर) में जो अङ्कन व पुष्पमालाएं उत्कीर्णित हैं, ठीक वही भोजपुर के मंदिरों में खचित हैं। जिस मधुछत्र का उल्लेख ऊपर आ चुका है, वह पारस्परिक प्रांतीय आदान-प्रदान का दृढ़ आधार है। ११वी शती की दशावतारी विष्णु मूर्तियों में प्रभावली का अङ्कन ही विकसित होकर मधुछत्र के रूप में परिणित हो गया। साथ ही चतुर्दिक् ज्यामितीय रेखावाली आठों कलियों का अङ्कन बरहटा की ११ वीं शती के शिव मंदिर की जालियों के अनुरूप है। (चित्र नं० ८) अब हम परमार मूर्तिकला की कतिपय विशेषताओं से एक विशेषता को उल्लिखित करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। मौर्य युग में मूर्तियों पर पालिश करने की विशेष प्रथा थी। इसके उदाहरण पटना म्यूजियम की मूर्तियां व बराबर (गया) की गुफाओं में विद्यमान हैं। उत्तरवर्ती काल में यह प्रथा विलुप्त सी हो गई थी। महाराजा भोज की निपुणता से पुनः इस प्रथा का उद्भव हुआ। मांडवगढ़ में अभी अभी जो नवदुर्गा के विशाल पट्ट

उपलब्ध हुए हैं, वे और भोजपुर का शिवलिङ्ग पालिश के भव्य प्रतीक हैं। स्निग्धत्व इतना है कि अपना मुखमण्डल देखा जा सकता है। भोपाल से २० मील लगभग स्थित शमसगढ़ में भी मूर्तियों पर ऐसी ही पालिश है। भोज की इस प्रथा को महाकोसल के कलाकारों ने आत्मसात् कर लिया था। इसके उदाहरण मुझे पनागर (जिला होशंगाबाद) में दृष्टिगोचर हुए (१) सौभाग्य से ये अवशेष लेख सहित हैं। इनसे स्पष्ट है कि तेरहवीं शती तक इस परम्परा का प्रचलन रहा। त्रिपुरी के निकट लमेठाघाट की मूर्तियों पर भी, जो कलचुरिकालीन हैं, पालिश पायी जाती है। कलचुरि और परमार मूर्तिकला में अधिकतर लाल और हरे रंग के स्थानीय पत्थरों का ही उपयोग हुआ है। भोजपुर के विस्तृत स्तम्भ त्रिपुरी के कर्णबेल के स्तम्भों की अनुकृति जान पड़ते हैं। प्रथम स्तम्भ पीठिका (खंभे के निम्न भाग) में कलशाकृति, चारों ओर पत्र-पुष्पों से युक्त, पायी जाती है। ऊपर का भाग भी अष्टकोण होकर कुछ गोलाई लिये हुए है। तदुपरि कमलाकृति के बाद एक विराट कमल बनाया जाता था, जिस पर शिलाएं आधृत होती थीं। योगिनी मूर्तियों की ध्यान मुद्राएं, आयुध, आभूषण, केशविन्यास, शारीरिक गठन एवं शिवपरिकर में व्यवहृत संगीतोपकरण व स्तम्भों में चित्रित लोकजीवन आदि महाकोसल और परमारों की भावपरम्पराओं को समत्व के प्रकाश में देखने पर सहसा मुख से निकल पड़ता है कि सब कृतियां एक ही कलाकार की दीर्घकाल व्यापी साधना की परिणति हैं।

इस विवेचन से बिलकुल स्पष्ट है कि भोजपुर का शिव मन्दिर महाराजा भोज की मूल्यवान् कीर्तिपताका है, जो भग्न होकर भी शताब्दियों से मानवता का जय घोष कर रही है। यहां की प्रतिमाओं की एक एक रेखा में ओजस्वितापूर्ण भावना साकार है। इनका ऊर्जस्वल सौन्दर्य निर्माण भले ही धर्ममूलक भावनाओं के आधार पर हुआ हो, किन्तु, भारतीय समाज जीवन एवं तात्कालिक आर्थिक वैभव का आभास भी इनसे मिलता है। मोक्षकामी भक्त की एकान्तिक या व्यक्तिमूलक साधना कला के द्वारा वेत्रवती के सुरम्य तट पर सामाजिक रूप में मूर्तिमन्त हो उठी है। संस्कृति, प्रकृति और कला का यह त्रिवेणीसंगम मानवीय चित्तवृत्तियों का जीवनशुद्धि-मूलक पुनीत धाम है। धन्य हैं वे कलाकार, जिन्होंने एकरोपक श्रम कर के ऐसी कृतियों का, ऐसे विचारों का, ऐसे तथ्यों का, ऐसे जीवन्त और सुकुमार भावों का सृजन किया, जिनसे सहस्राब्दियों तक मानवता अनुप्राणित होती रहेगी। ब्रह्माण्डव्यापिनी, ओजस्विनी मानव-कल्याण कामिनी, भोजपुर की यह पुनीत भूमि और शैव संस्कृति का यह अमर स्मारक, मानवीय सद्वृत्ति के पोषण में मार्ग दर्शक हो, यही कामना है।

शिल्प-शाला

कठोर प्रस्तर पर कोमल कमनीय भावावलियां तो भोजपुर की आत्मा हैं ही, किन्तु, सबसे बड़ी विशेषता जो भोजपुर में विद्यमान है, मेरी विनम्र सम्मति में वह अनुपम है। सुन्दरतम

(१) खण्डहरों का वैभव, खण्डहर-दर्शन पृष्ठ ३०-३१।

शिल्पकृतियों का निर्माण तो भारत के अन्य प्रान्तों में भी हुआ। कलाकारों ने हर्षोन्मत्त होकर जनता को रस द्वारा अनुभूत आनन्द का परिचय भी कराया, किन्तु, इन कलाकारों की भाव-ज्योति को उद्दीपित करने वाली प्रेरणा का प्रकाश कहां से मिला और इनका खाका कैसा था, आदि की कल्पना बड़ी क्लिष्ट है। भोजपुर इसका अपवाद है। भोजपुर के मन्दिर के निकट खुले मैदानों में जो चट्टानें हैं, उनपर कहीं मूर्तियां, कहीं स्तम्भ और कहीं ज्यामितियों के विभिन्न खाके और स्तम्भाकृतियों के पूर्व रूप उत्कीर्ण हैं। ऐसा लगता है, कि जैसे बहुत से निगम (शिल्पी) इन खाकों को देख कर प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों के तत्वावधान में सामूहिक निर्माण करते रहे हों। कलाकृतियों की अपेक्षा कला समीक्षकों की दृष्टि में इन खाकों का बहुत अधिक महत्व है। प्रेरणा व्यक्ति का निर्माण करती है। जब उसकी पृष्ठ भूमि व्यक्तित्व की स्वस्थ और सुदृढ़ परम्परा का सूत्रपात करती है। सचमुच ये भोज की निपुणता में चारचांद लगाती हैं। क्या ही अच्छा हो इन रेखाओं की सुरक्षा के लिए, जो हमारे देश के सक्रिय शिल्प स्थापत्य के अनुकरणीय प्रकाश स्तम्भ हैं प्रेरणा के केन्द्र स्थान हैं, हम प्रयत्नशील हों। भोजपुर के मन्दिर के सम्बन्ध में अविस्मरणीय बात यह है कि वह अपूर्ण है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, मन्दिर के द्वार का दाहिना भाग परिपूर्ण है, और बायें भाग में केवल पत्थरों को व्यवस्थित रूप से सजाकर छोड़ दिया गया है। केवल विशाल स्तम्भ बनाना ही अवशिष्ट था। (चित्र नं० ४) मेरी राय में इस मन्दिर का अपूर्ण रह जाना भक्त हृदय के लिए भले ही परिताप का विषय हो, किन्तु, भारतीय गृह निर्माणकला के मौलिक तथ्यों को समझने वालों के लिए यह अपूर्णता एक वरदान है। इससे अध्ययनशील जिज्ञासु को जानने का अवसर मिलता है कि उस समय शिल्पीगण किस प्रकार मन्दिर का खाका निर्माण करते थे। शिल्पशास्त्र का कथित सिद्धान्त और इस प्रकार की अपूर्ण कृति दोनों में बड़ा अन्तर है। यह अपूर्ण क्यों रहा, यद्यपि इसका सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त करने के साधन हमारे पास नहीं हैं, तथापि सोचा यह जाता है कि सोमनाथ के आक्रमण के बाद भोज के हृदय में शिव भक्ति का वेग संस्कृति के रूप में विकसित हुआ। सम्भवतः भोज काल के द्वारा कवलित (सन १०५४) हो जाने के कारण इसे पूर्ण न करा सका। किन्तु, अपूर्ण होने पर भी यह भोजकालीन मध्यभारत का एक ऐसा महान् व विचारोत्तेजक स्मारक है, जो विद्यार्थियों और कला, समीक्षकों के लिए शिल्पकला विषयक बहुत से मूल्यवान् मौलिक तथ्यों को उपस्थित करता हुआ, श्रद्धामूलक जीवनयापन करने वालों के हृदय को भी स्पन्दित करता है। मन्दिर में व्यवहृत पाषाण वहीं का है। हां, कतिपय मूर्तियों और शिवलिङ्ग का प्रस्तर भिन्न है। प्रस्तरों की संयोजना में गारे का प्रयोग अत्यन्त अल्प हुआ है। केवल ताम्रशलाकाओं से ही काम चलाया गया है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूँ कि इसका निर्माणकाल ई० सन् १०२६ से १०५४ के मध्य का है। शंका हो सकती है कि इतने विराट् प्रासाद और बांध का उल्लेख भोज की प्रशस्तियों एवं सम-सामयिक साहित्य में क्यों नहीं हुआ? उत्तर यह है कि अपूर्ण रह जाने के कारण मंदिर अप्रतिष्ठित रह जाने के कारण ही अनुल्लिखित रह गया ज्ञात पड़ता है।

ऐतिहासिक बांध

बांध की प्रसिद्धि तो आज भी पर्याप्त है। सचमुच ऐसे विशाल बांध अन्यत्र कम ही हैं। अन्तर्प्रान्तीय ऐतिहासिक अनुशीलन से सिद्ध है कि ११वीं शती में राजा महाराजाओं पर अपने को अमर करने के लिए जलाशय निर्माण की धुन सवार थी। तात्कालिक गुजरात, बुन्देलखण्ड और महाकोसल के कलाप्रेमी शासकों ने अपनी उज्वल कीर्ति के संरक्षणार्थ भव्य जलाशयों का सृजन किया है। ऐसे अनुकूल वातावरण में भोज जैसा वास्तुकला मर्मज्ञ और महत्वाकांक्षी शासक पश्चात् पद कैसे रह सकता था? भोज ने आजीवन जो भी कार्य किये हैं, उनमें से अधिकांश अभूतपूर्व हैं। भोजपुर का बांध बनवाते समय प्रकृति सहायक थी। पहाड़ियों को बांधा गया और कहीं कहीं अनिवार्य परिस्थिति के वशीभूत हो नदी को भी बांधना पड़ा। इस विशाल बांध की कल्पना इन पंक्तियों के पढ़ते समय चाहे मस्तिष्क में न आवे, पर, यदि भोजपुर के मन्दिर पर से एक दृष्टि चतुर्दिक् डाली जाय, तो ऐसा लगेगा कि कई मीलों तक का मार्ग ढलवाँ है और हम सर्वोच्च शिखर पर हम अधिष्ठित हैं, चारों ओर की पहाड़ियां प्रकृति और संस्कृति का वास्तविक सौन्दर्य चमका देती है। कहा तो यह जाता है कि यह बांध लगभग ढाई सौ वर्ग मीलों में था। भोजपुर के शिव मन्दिर के सम्मुख समाधियों के निकट से एक पगडंडी शिल्प-निर्माणशाला होते हुए गुफा की ओर जाती है। पर, वहां का बांध खण्डित है। कहा जाता है कि मालवा के होशंगशाह (१४०५-१४३४) ने इसे तुड़वा दिया था। गोंडों में यह लोकोक्ति है कि बांध का यह लघुतम भाग तीन महीने के लगातार परिश्रम से तोड़ा गया, तथा लगातार तीन वर्षों में उसका जल खाली हुआ और ३० वर्षों के बाद भी मनुष्यों के बसने योग्य यह स्थान न बन सका। इतना था उस जलाशय में दलदल। कहने के लिये तो यह भाग ध्वस्त कर दिया गया है, परन्तु, दोनों पहाड़ियों के बीच जो अस्त-व्यस्त पत्थर पड़े हुए हैं, उनसे स्पष्ट है कि वे इतनी दृढ़ता के साथ जमाए गए थे कि शताब्दियों की उथल पुथल और प्रवाहमान जल के थपेड़ों के बावजूद भी अपना गौरवपूर्ण स्थान नहीं छोड़ पाये। नदी पर बहुत बड़ा और गहरा कुण्ड है। इस सम्बन्ध में अनेक दन्तकथाएँ हैं। वहांसे बांध की दीवार फांद कर छोटी सी टोरिया पर सघन वन में कुछ ऐसे पत्थर जम गए हैं, जिनकी प्रसिद्धि गुफा के रूप में हो गई है। यहां कुछ मूर्तियां भी होने की बात सुनी है। मृगराज का यह क्रीड़ा स्थल है। शिवमन्दिर के धार्मिक व्यवस्थापक कौन थे; प्रमाणाभाव में, कहना कठिन है, किन्तु, वर्तमान में गोसाइयों के अधिकार में है। यद्यपि इनकी प्रधानता क्यों और कैसे हो गई, इसका मौलिक इतिहास अभी हमारे सम्मुख नहीं है। वर्तमान वृत्तान्त से ज्ञात हुआ कि हमारे पूर्वजों ने इस अरक्षित व उपेक्षित मन्दिर की व्यवस्था हस्तगत की और जब भोपाल का राजपरिवर्तन हुआ तब यहां के शासक गौस मुहम्मद ने एक सनद द्वारा कुछ ग्राम महन्तों को इसलिये दिए कि मन्दिर की व्यवस्था सुचारु रूप से चले और अतिथियों का उचित सम्मान हो। गौस मुहम्मद द्वारा यह दान पत्र धार्मिक सहिष्णुता व हिन्दू-मुसलिम एकता का उज्ज्वल प्रतीक है।

भोजपुर की सनद

भारत के मुसलमान शासकों में कतिपय ऐसे उदार, परमसहिष्णु और न्यायप्रिय शासक हुए हैं जिनका नाम आज भी उज्ज्वल है। जिस अलाउद्दीन खिलजी को मूर्ति-भंजक कहा जाता है, उसने अपने शासनकाल में बहुसंख्यक हिन्दू मंदिरों का जीर्णोद्धार भी कराया था। अकबर, जैनुल आबेदीन, सुलतान नासिरुद्दीन, गयासुद्दीन मुहम्मद तुगलक आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इसी प्रकार हिन्दू राजाओं ने भी दूसरे धर्मों के प्रति व्यापक उदारता का परिचय दिया। मेवाड़ के राणा कुम्भा द्वारा निर्मित कीर्तिस्तंभ में हिन्दू-मूर्तियों के साथ ही एक अलग पत्थर पर "अल्लाह" का नाम खुदा होना इसका प्रतीक है। गुजरात के विख्यात और प्रकांड साहित्यिक मंत्री वस्तुपाल तेजपाल ने भी शासित प्रदेश में अनेक मस्जिदों का निर्माण कराया था। शिवाजी की धार्मिक उदारता भी प्रख्यात है। कथित परम्परा का परिपाक भोजपुर की सनद में लक्षित होता है। एक बात और भी स्मरणीय है कि आशापुरी और भोजपुर के अधिकांशतः अवशेष प्रायः अखंडित हैं।

सनद की प्रतिकृति का (चित्र नं० ६-१०) लिप्यंतर इस प्रकार है:—

वइस्मुहूत आला *गौस मोहम्मद खां बहादुर*
वजीरुद्दौला नवाब *१२०८*

हयात मोहम्मद खां फिदवी बहादुरशाह १२०५

मुकद्दमान मजारेआन मौजा भोजपुर वगैरह मशमूला परगना ताल चिन्दानन्द मवाजेआत मरकूम अज इब्तेदाए सन १२०७ फसली मय अबवाब व रकम सवाई व परजना व फरोए याफ्त।- वसीयगा खैरात मीरास बइस्म खुशहाल बिन गोशाई इनायतशुद। बायद के बनाम, बुरदा रुजूह आबुर्दह बवाजिब देहात मजकूर अजरूए लाशों व दरशे ताल व साल ईसाल करदा बाशेद व सबील मूमी इलैश, आंके रियायारा बहुस्ने सुलूक राजी खुशदिल दारतह। बतौफीर व तकसीर आबादी कोशद। बजह इरकाम ई सनद बर बर्के मिस मसीगा नानकार व गोशाई मजकूर मुकर्रर याफ्त। बायद के फर्जन्दान व बिना बरआं मुस्तारेऊ व रहे इन्तजामे रियासत सरकार अजीदेहात नानकार इस्त्राफुजूर न बाशन्द। दरीबाब किस्म अक्साम बहक्के खुदशनासदा

भोजपुर-३५०) *१२५१) कुल* *कोरिया ६०१)*

अगर कसे अज सरदारान जर या जमीन खैरात मस्कूर बिगीरद मुसलमान रा कसमे खुदा व हिन्दूरां कसम व ऊ गाओअस्त।

तहरीर फित्तारीख शशुम शहर रबी उस्सानी सन् ४१ जुलूसेवाला सन् १२१४ हिजरी कलमी शुद। व अगर ई सनद व कसमरा मन्जूर न कुनद व मालिकहा मर दुमारा गिलाजत खुरन्द।

व अगर कसे जर या जमीन खैरात रा बिगीरद बर जन व मादर व हमशीरए ऊ तलाक अस्त।

अगर फिरंगियां मजाहिम शवंद आंहारा कसम हजरत मसीह अहेहिस्सलाम अस्त।

माचीयून

नकल दफ्तर दीवान घ तारीख शशुम रबीउस्सानी सन ४१ जुलूसेवाला सन १२०६ हिजरी। नकल दफ्तर इस्तिफ्ता बतारीख शशुम रबी उस्सानी सन ४१ जुलूसेवाला सन १२०६ हिजरी। नकल दफ्तर मियां साहब बहादर बतारीख शशुम रबी-उस्सानी सन ४१ जुलूसेवाला सन् १२०६ हिजरी। नकल दफ्तर शुद बतारीख शशुम रबी-उस्सानी सन् ४१ जुलूसेवाला सन् मुताबिक १२०६ हिजरी

भावानुवाद

परमेश्वर के नाम से

ताल परगना के मौजा भोजपुर वगैरह के पटेल और किसानों को सूचित किया जाता है कि कथित मौजों को शुरू १२०७ फसली से मौजों की पूरी आमदनी धर्मादा के रूप में गुसाई के पुत्र खुशहाल को परम्परागत दी जाती है। हमने जो दो गांव प्रदान किये हैं उसके बदले में वे हमें आशीर्वाद देते रहें और प्रजा के साथ भी अच्छा व्यवहार करते हुए, उन्हें प्रसन्न रखें तथा जन-संख्या और उनकी वृद्धि में प्रयत्नशील रहें हों। ताम्रपत्र पर इस प्रकार प्रमाण पत्र को लिखने का उद्देश्य उपयुक्त गोसाई के उदरपूर्ति का साधन बने। मेरी सन्तान और उनके अधीन कर्मचारी राज्य के प्रबन्ध के लिये इनके उदरपूर्ति के सम्बंध में निश्चित ग्राम में किसी किस्म का हस्तक्षेप न करें। इस सिलसिले में उनको स्वयं अपनी शपथ है।

भोजपुर ३५०) १२५१) कुल कोरिया ६०१)

यदि कोई सरकार ऊपर दान में दी हुई जमीन व धन पर अधिकार करे तो मुसलमान को सुअर और हिन्दू को गाय की कसम है। यह लेख ६ रबी उस्सानी ४१ जुलूसेवाला १२१४ हिजरी में लिखा गया।

यदि कोई इस सनद और कसम को न माने मालिक हो तो लोगों का मैला खाए यदि कोई दान में दी गई जमीन या धन को छीने तो उसकी मां, पत्नी, बहिन पर तलाक है।

यदि ईसाई इस में हस्तक्षेप करें तो उनको मसीह अलेसल्लाम की कसम है।

सनद देने वाले

नकल दफ्तर प्रधान मंत्री बतारीख शशुम रबी उस्सानी सन् ४१ जुलूसेवाला सन् १२०६ हिजरी। नकल दफ्तर इस्त वां (फतवा दिया हुआ) बतारीख शशुम रबी उस्सानी सन् ४१ जुलूसेवाला सन् १२०६ हिजरी। नकल दफ्तर मियां साहब बहादुर बतारीख शशुम रबी-उस्सानी सन् ४१ जुलूसेवाला सन् १२०६ हिजरी। नकल दफ्तर शुद बतारीख शशुम रबी उस्सानी सन् ४१ जुलूसेवाला सन् मुताबिक १२०६ हिजरी

जैन-मन्दिर

महाकोसल, विन्ध्यप्रदेश और मालवभूमि में शैवों के साथ जैनों का भी अस्तित्व बहुत प्राचीन युगसे रहा है। भोजपुर इसका अपवाद नहीं। भोजपुर मन्दिर के पृष्ठ भाग में लतागुल्मों से आच्छादित एक जैन मन्दिर है जिसकी छत ३० फीट ऊंची है। गर्भगृह १४ फीट लम्बा ११ फीट चौड़ा है और २० फीट से अधिक लम्बी तीर्थङ्कर की खड्गाकार प्रतिमा है। (चित्र नं० ११-१२) निकटवर्ती २ अन्य प्रतिमाएं भगवान् पार्श्वनाथ की हैं। प्रांगण में भी कतिपय जैन मूर्तियां बिखरी पड़ी हैं। कहा जाता है कि किसी समय यहां मन्दिर था। ध्वस्त हो जाने पर मूर्तियां नष्ट हो गईं। किन्तु, यह विशाल त्रिपुटी न उठाई जा सकी। कुछ भक्तों ने पुरातन अवशेष व पाषाणों से मन्दिर की सृष्टि कर दी है। कला विहीन भक्तहृदयों द्वारा बहुत से मूल्यवान् प्रतीकों की करुणाजनक उपेक्षा से अन्तर्मन भर आता है। भोजपुर के प्रधान शैवमन्दिर के प्रांगण में जो मन्दिर बना है, उसकी दक्षिणाभिमुख दीवार में अम्बिका, गोमेधयक्ष सहित भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा (चित्र नं० १३) आम्र के वृक्ष पर अवस्थित है। जैन मन्दिर की मूर्तियां १३ वीं शती की हैं और मन्दिरस्थ मूर्ति ११ वीं शती के लगभग की हैं। इन प्रतिमाओं के लेखों से अवगत होता है कि १३ वीं शती तक भोजपुर अत्यन्त उन्नतिशील नगर के रूप में प्रसिद्ध था।

भोजपाल—भोपाल

जन-प्रसिद्ध है कि भोपाल प्रदेश का पूर्व नाम भोजपाल था तात्पर्य भोज का प्रदेश, किन्तु मुसलमानों का शासन आने पर जिस प्रकार बहुत से संस्कृतिपरक नगर नामों का आमूल परिवर्तन किया गया, उसी प्रकार जकार का लोप होकर भोजपाल "भोपाल" मात्र रह गया। भोज और पाल शब्द दो अर्थों में संयोजित है। भोज-राजा और पाल का तात्पर्य बांध की दीवार से है। ऐसा लगता है कि इस प्रदेश में निर्मित भोज की दीवार अत्यन्त प्रसिद्ध रही होगी। इसी आधार पर इस प्रदेश का नाम भोजपाल कहा जाता रहा हो, तो आश्चर्य नहीं। भोज द्वारा पालित-शासित प्रदेश अर्थ भी सार्थक है[१]।

१- प्रसंगतः सूचित करना अनिवार्य है कि जिस प्रकार कई भोज राजा हुए हैं, उसी प्रकार भारत में विभिन्न प्रांतों में भोजपुर नाम के कई ग्राम भी पाए जाते हैं। भोजपुर का उल्लेख 'हरिवंश पुराण' के अध्याय ११७ में आया है, जो विदर्भ की राजधानी था। भेलसा के स्तूप (३६३ पृष्ठ) के लेखक ने इसकी स्थिति विदिशा से आग्नेय ६ मील पर बताई। पिपलीय बिजौली नामक बौद्ध स्तूप यहां है। जनरल कनिंघम के मत से प्राचीन विदर्भ में नर्मदा-उत्तर प्रदेश में सम्पूर्ण भोपाल का समावेश होता है। भोज-लोग विदर्भ में शासन करते थे, जैसा कि अशोक के लेख से प्रकट है। (देखिये भाण्डारकर द्वारा

आशापुरी

भोजपुर से उत्तर की ओर ४ मील पर आशापुरी नामक ग्राम है। यह ११-१२ वीं शतों में वैष्णव परम्परा का धाम था। पुरातन साहित्य व शिलोत्कीर्ण लेखों में आशापुरी का उल्लेख नहीं मिलता न अर्वाचीन अन्वेषकों ने ही इस पर ध्यान दिया है। यहां के खंडहरों में बिखरी हुई मूर्तिकला की मूल्यवान संपत्ति से ज्ञात होता है कि निःसन्देह १२वीं शती में उन्नतिशील नगर रहा होगा। यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आशापुरी स्वतन्त्र नगर था या भोजपुर का एक उपनगर मात्र। कारण कि भोजपुर के पश्चिमाभिमुख तो विशाल जलाशय था। केवल पूर्व व उत्तर का भाग ही मनुष्यों के रहने योग्य था। आज वहां छोटी-मोटी पहाड़ियां और झाड़ी हैं। उत्तर की ओर मैदान के रूप में खुला भाग मिलता है। तदनन्तर साधारण टीले पर बसा हुआ आशापुरी ग्राम है। मैं इसको भोजपुर का उपनगर मानता हूं। यहां समुन्नत वैष्णव परम्परा एवं शिव और शक्ति के प्रति भी जनमन में पूर्ण भक्ति थी। आशामाता के मन्दिर व एक ही पिण्डी में उत्कीर्णित एकादश रुद्र समूह से यही सिद्ध होता है। भागवत कालीन पांच सम्प्रदायों में पाशुपत भी एक था। वाङ्मय का यह सैद्धांतिक रूप आशापुरी में मूर्त हो चुका था। यहां आशामाता का एक मन्दिर है। इसी के नाम से आशापुरी ग्राम

रचित "दक्षिण का इतिहास" भाग ३) चम्मक के ताम्रपत्र में वाकाटक वंशीय द्वितीय प्रवरसेन के लेख में भोज का स्वतन्त्र राज्य के रूप में वर्णन है। उसमें बरार अर्थात् प्राचीन विदर्भ तथा चम्मक का समावेश होता है। इलिचपुर से ४ मील नैऋत्य कोण में अवस्थित चमांक ग्राम भोजकट के राज्यान्तर्गत था (जरनल आफ दि एशियाटिक सोसायटी १११४ पृष्ठ ३२१)।

"भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय १० में भोजों की राजधानी के मथुरा के रूप में कहलाए जाने का उल्लेख है।

शाहाबाद जिले में डुमरांव के निकट भी एक भोजपुर है। कन्नौज से २५ मील गंगा में दक्षिण कूल पर भी एक भोजपुर अवस्थित है। (एपीग्राफिया इण्डिया वाल्यूम १ पृष्ठ १८१) जरनल एशियाटिक सोसायटी बंगाल पृष्ठ ११४ में भोजेश्वर महादेव का और जैनों द्वारा निर्मित मन्दिर वाले भोजपुर का वर्णन है, जो विन्ध्य पर्वतावली में अवस्थित है। ब्रह्मांड पुराण में भी इसका उल्लेख है। स्तगवज अर्थात् भोज का सम्बन्ध बिहार स्थित भोजपुर से है। बिहार और भोपाल वाले भोजपुर को एक मानकर भोजपुरी भाषा के इतिहास लेखन में सर जार्ज ग्रियर्सन ने भ्रामक कल्पनाओं का सूत्रपात किया है। जहां तक भोजपुरी भाषा का सम्बन्ध है, बिहार का भोजपुर-प्रांत ही समझना चाहिए। भोपाल के निकटवर्ती भोजपुर को भोजपुरी का केन्द्र मानना भारी भ्रम है।

प्रस्तुत भोजपुर मन्दिर निर्माण-विषयक अनेक दन्तकथाएं प्रचलित हैं किन्तु एतद्विषयक अन्वेषण के उपरान्त वे निर्मूल सिद्ध हुईं।

बसा ऐसी लोकोक्ति है१।

गांव से कुछ दूर आशामाता के वृहत मन्दिर का खण्डहर है। ऐसा लगता है कि जानतिक और शासकीय उपेक्षा के कारण किसी समय यह ढह गया था। उसकी भव्यता, विशालता और आकर्षण आश्चर्यजनक है। मन्दिर के खण्डहरों में चार फीट से अधिक चौड़ी आशामाता की मूर्ति है और ऊंचाई इसलिए कल्पनातीत है कि चरण तक का भाग भूमिस्थ है। मूर्ति (चित्र नं० १४) अष्टभुजी है। दुर्भाग्य से एक ही हाथ शेष है। कहना कठिन है कि किन किन हाथों में क्या क्या आयुध थे। मूर्ति का परिकर श्रेष्ठ कलाकार की साधना का साकार स्वरूप उपस्थित करता है। तान्त्रिक परम्परा में शक्ति के रूप में आशामाता का क्या स्थान है, इसकी विवेचना विवक्षित नहीं। मूर्ति भक्तों के सिन्दूर द्वारा, विलेपित होने से अपने स्वाभाविक सौंदर्य को अधिकांशतः खो चुकी है, किन्तु, अवशिष्ट भाग विगत सौंदर्य की आभा लिए हुए हैं। विभिन्न आभूषणों से विभूषित बाईं जंघा के निकट एक बालक बैठा है व एक खड़ा है। सिंहवाहनी माता, दो बालक और परिकर में उत्कीर्णित आम के टिकोरे, इस बात का प्रमाण उपस्थित करते हैं कि प्रतिमा अम्बिका की है। माता के स्तनों पर एक इन्च चौड़ी पट्टी बंधी है२ श्याम पाषाण पर उत्कीर्णित इस प्रतिमा के सम्मुख इतनी ही बड़ी एक और देवि मूर्ति है, जहां सुविधापूर्वक बैठना तक कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहीं गर्भ-गृह था, जिसका तोरण द्वार निकट ही सामान्य हालत में खड़ा है। (चित्र नं० १५)

तोरणद्वार

मन्दिर का तोरणद्वार अब कला का प्रतीक नहीं रह गया है। वह स्थानीय जिस लाल पत्थर का बना है, पानी गिरने से, काई जम जाने के कारण खिरते-खिरते तोरणान्तर्गत मूर्तियों के मुखमण्डल विकृत हो गये हैं। वह लगभग १२ फीट चौड़ा है। पत्थरों में दबे पड़े रहने के

---

(१) मध्यकालीन भारत के प्रांत में शिव और शक्ति परम्परा के प्राबल्य के कारण अधिष्ठाता और अधिष्ठातृ देवियों के नाम से कई नगर और दुर्ग बसाए जाने के प्रमाण मिलते हैं। भोपाल राज्य भी इसका अपवाद नहीं जैसाकि गिन्नौर के पास गिन्नौरीदेवी का मन्दिर है। महाकोसल में तो एक दर्जन से अधिक तथाकथित दुर्ग व नगर मिलते हैं। विस्तार के लिए,, महाकोसल और तन्त्र परम्परा'' (भारती वर्ष १ अंक ३,) एवं ''महाकोसल में शक्ति पूजा का प्राचीनत्व'' (साहित्य सन्देश पत्रिका) शीर्षक लेखक के निबन्ध।

(२) स्तनों पर पट्टी बांधने की प्रथा पुरानी है। श्रीमद्भागवत में इस प्रकार उल्लेख आया है :—

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा नांजः प्रतिव्योढुमलं

व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह:

—दशम् स्कन्ध ३३।१८

कारण ऊंचाई का अनुमान कठिन है। इसे तीन भागों में इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है। निम्न भाग में तीन भाव पूर्ण नारी मूर्तियां हैं। उनके ऊपर की मध्य रेखा में ४ कामसूत्र के आसन हैं। फीचक के बाईं ओर एक स्तम्भाकृति, कुम्भ-कलश, जो ४ फीट से कम नहीं होगा, पर आवृत है। शेष भागों में शृंखलाओं का गठन व लघुतम पुरुषाकृतियां हैं। तोरण का दूसरा भाग भी उपर्युक्त भाग के समान है। वैशिष्ट्य केवल इतना है कि कुछ पुरुष गठित शृंखलाओं में पैर फंसाए हुए हैं। तोरण के ऊपर विष्णु, गणेश, कार्तिकेय, पार्वती और कुबेर आदि की मूर्तियों के अतिरिक्त दाहिनी ओर बांसुरी और गुप्तकालीन तन्तुवाद्य बजाते हुए सभासद मस्ती में झूम रहे हैं। (चित्र नं० १५) दोनों ओर एक मिथुनयुगल क्रीड़ा पर रहे हैं, जो शिष्टता की अन्तिम सीमा है। तोरण के मध्य भाग में दुर्गा की मूर्ति अंकित है। तोरण का तीसरा भाग पृष्ठभूमि स्वरूप आज भी आकर्षण को लिए हुए हैं। इसमें उत्कीर्ण योगिनी मूर्तियां विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

मन्दिर के चारों ओर एक फर्लाङ्ग लगभग गढ़े गढ़ाये मूर्तियां-युक्त पत्थर पड़े हैं। इनमें बहुत सी ऐसी रेखा व पुरुषाकृतियां अङ्कित हैं, जिनकी समता महाकोसलान्तर्गत बरहुटा की रेखाकृतियों से की जा सकती हैं। इन अवशेषों के बीच यों तो और भी कई वस्तुएं हैं, जिनका तात्कालिक महत्व भी है, पर स्थान विवर्द्धन के भय से उन्हें अनुल्लिखित रखना पड़ रहा है। उनमें दो प्रतिमाएं इतनी सुन्दर और भावपूर्ण हैं, जिनके उल्लेख के बिना आशापुरी का विकसित मूर्तिविज्ञान आत्मसात नहीं किया जा सकता। इन दोनों मूर्ति-अवशेषों को अभूतपूर्व कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। मेरा तात्पर्य अवशेषों में ही पड़े हुए दो अस्थि पंजरों से है। ये ४ फीट (चित्र संख्या १६) से कुछ अधिक लम्बे व ढाई फीट लगभग चौडो २ शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं। ये दुर्गा गण के सदस्य ज्ञात होते हैं। शरीर विज्ञान (Anotomy) के अभ्यासियों के लिए ये कृतियां बहुत ही महत्व की हैं।

शेषशायी विष्णु

मायागाता के मन्दिर से आशापुरी की ओर तीन फर्लाङ्ग बढ़ने पर, दो फर्लाङ्ग से कुछ अधिक व्यास परिधि में कुछ ऊंचाई पर खण्डहर फैले हुए हैं। इनके सामने विशाल व गहरा जलाशय था। अब खेत हैं। ये खण्डहर वैष्णव परम्परा के उर्ज्वस्वल प्रतीक हैं। इनमें बिखरी मूर्तियां सुकुमार और भावपूर्ण हैं। कलाकार असमंजस में पड़ जाता है कि किसे देखें, किसको छोड़ें। खण्डहर के मध्य अस्त-व्यस्त पत्थरों में सुदृढ़-शिला के निम्न भाग में शेषशायी विष्णु की भव्य प्रतिमा अवस्थित है। जिसकी लम्बाई ६ फीट और चौड़ाई २ फीट ५ इन्च है। मध्य भाग में किरीट मुकुट धारण किए विष्णु शेषनाग पर शयन किए हुए हैं। निकट में ४ परिचारक गदा और ढाल लिए खड़े हैं। शेषनाग को सूक्ष्म रेखाओं में और विष्णु के शरीर की सिकुड़नों को व्यक्त करने में कलाकार ने अद्भुत सफलता प्राप्त की है। एक बाएं हाथ में चक्र और दूसरा खण्डित। प्रथम दाएं में गदा और द्वितीय हाथ खण्डित। समीप की लक्ष्मी मूर्ति की नारी परिचारिका एक है।

इन दोनों के उत्तरीय व अधोवस्त्र पर अंकित फूल पत्तियां अजन्ता की छींट का सुस्मरण कराती हैं। उनके बैठने का कमलासन ऐसा बना है मानों मौर्यकालीन पलंग का स्तम्भ हो। लक्ष्मी की नागावली हर्ष की लेखनी का स्मरण कराती है। दोनों ओर दो पुरुष भक्तिसिक्त मुद्रा में खड़े हैं। भावभंगिमा व कटिप्रदेश के ऊर्ध्व भाग की बाईं ओर का झुकाव जिन भावों का द्योतक है, वह शब्दों का विषय न होकर, अनुभवगम्य तथ्य है। इसका केशविन्यास जटाजूट का रूप धारण कर चुका है। बाएं छोर पर गरुड़ की बैठी हुई मूर्ति है। दायीं ओर भक्तिसिक्त भावों को लिए नारी का उद्दीपित मुखमण्डल परिपक्व रस का कन्द है। श्रद्धामूलक हृदय ही इसका अनुभव कर सकता है। जिस आसन पर विष्णु शयन किए हैं, वह इतना स्वाभाविक है कि उसके कटि प्रदेश का भाग कुछ झुक गया है जो कला समीक्षक पर व सामान्य प्रेक्षक तक को प्रभावित करता है। पलंग में तक्षित रेखाएं व पुष्पलताएं समय निर्णय में सहायक होती हैं। विष्णु के रक्षकों के ऊपर पट्टिका है, जिसके दोनों ओर वराह और नृसिंहावतार हैं। परिकर कथित पट्टिका को विवेचन और अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में विभक्त करना उपयुक्त होगा। दाहिना भाग प्रथम रक्षक के ऊपर समाप्त होता है। इस पर वराहावतार के बाद सूर्य मूर्ति, तदनन्तर नवग्रहों का सशरीर सफल अङ्कन है। बाएं भाग का अङ्कन सचमुच अनुपम है। जिस प्रकार पश्चिम भारत के १२वीं शती के जैनाश्रित कलाकारों ने नृत्य के गतिशील भावों को चित्र-रेखा द्वारा स्थितशील बनाने की सफल चेष्टा की थी, वैसा ही अनुकरणीय प्रयास मध्यभारत के प्रतिभा-सम्पन्न कलाकरों ने ११वीं १२वीं शताब्दी में किया जान पड़ता है। आठ नारी मूर्तियां और गणेश जी नृत्य में तन्मय हैं। प्रथम मूर्तिका दाहिना चरण कुछ उठा हुआ, बायां हाथ दाहिनी जंघा पर बड़े ही अभिनय के साथ रखा गया है। द्वितीय नारी मूर्ति दाहिने हाथ को कान के पास लिए और बायें घुटने पर टिकाए हैं। शेष इन्हीं भावों का अनुकरण करती हैं। ऐसा लगता है सभी नृत्य में इतने लीन हो गये हैं कि अपने आप को कुछ क्षणों के लिए विस्मृत कर दिया हो। गणेश जी दाहिना पैर उठाए मुख बना कर नाच रहे हैं। आठों स्त्रियां अष्ट सिद्धियों का प्रतीक हैं।

मूर्तिकला की दृष्टि से यहां पर एक बात स्मरणीय है कि भारतीय नृत्यशास्त्र से शरीर संचालन द्वारा जो रससृष्टि होती है, इनसे उस पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। मुख्य मूर्ति के निम्न भाग में गरुड़ विराजमान हैं। निस्सन्देह यह आकृति १२वीं शती के बाद की नहीं हो सकती, जैसा कि पलंग में उत्कीर्णित रेखाएं, आभूषण और केश-विन्यास से स्पष्ट है। मूर्ति का यह परिकर अपूर्ण ज्ञात होता है। यहां विष्णु का विशाल मन्दिर अवश्य रहा होगा। जिस स्थिति में आज अत्यन्त प्रभावोत्पादक वर्णित मूर्ति पड़ी है, लिखते बड़ा खेद हो रहा है कि इस कलाकृति की रक्षा एक भारी चट्टान के द्वारा इस रूप से हो रही है, जो कभी भी इस इस सौंदर्याभिव्यञ्जक सुकुमार प्रतिमा को सदा के लिए नष्ट कर सकती है। तात्पर्य शिला का पूरा आधार सूचित प्रतिमा ही है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वस्तुतः यह मूर्ति कहां स्थापित रही होगी। यद्यपि ध्वस्त खण्डहरों में पत्थरों से ढकी भूमि के विषय में

निर्णयात्मक रूप से कहना कठिन है, किन्तु, जहां वर्तमान मूर्ति अवस्थित है, और पड़ी हुई शिला से तो यही प्रकट होता है कि गिरते समय छत का हिस्सा मूर्ति पर अटक गया जान पड़ता है। मूर्ति के प्रांगण की फर्श की जुड़ाई बहुत पुरानी लगती है। आगे के भाग में कुछ सीढ़ियां नीचे उतरने को हैं, जहां पूर्व जलाशय था।

उपर्युक्त प्रतिमा के निकट ही एक ध्वंसावशेष, चार स्तम्भ एवं तदुपरि शिलाएं हैं। (चित्र नं० १७) ऊपर के छत की शिलाएं गिर चुकी हैं। स्तम्भों की सुन्दरता और उस पर की गई पच्चीकारी बहुत ही सूक्ष्म है। (चित्र नं० १८) भोजपुर के स्तम्भ स्निग्ध हैं, जबकि इन स्तम्भों का कोई अंश ऐसा नहीं, जहां खुदाई न की गई हो। ये स्तम्भ समसामयिक प्रान्तीय शिल्पकला के उल्लेखनीय प्रतीक हैं। महाकोसल के पनागर (जिला होशंगाबाद) के स्तम्भों से इनकी समता की जा सकती है, जो ११ वीं-१२ वीं शती के हैं। आशापुरी के स्तंभो के तीनों भाग में कलश व उसमें डाली गई पंक्तियों का उत्कीर्ण शिल्पभास्कर्य देखते ही बनता है। करणवेल (त्रिपुरी के समीप) के स्तम्भों से इन स्तम्भो का कलात्मक महत्व अधिक है। (चित्र नं० १८) इन चारों पर रखी हुई शिलाओं में उत्कीर्ण रेखाएं बरहटा (होशंगाबाद) की रेखाओं से सामिप्य रखती हैं। विशाल स्तम्भो के सर्वोच्च भाग में चारों ओर प्रायः लोकजीवन व आमोद प्रमोद के भाव खचित करवाने की प्रथा प्राचीन काल से रही हैं। (चित्र नं० १९) प्रस्तुत स्तम्भों व छत के मध्यवर्ती खांचों में तथाकथित परम्परा का अनुगमन करने वाले चार लोक शिल्प उत्कीर्णित हैं, जो सात भागों में विभक्त हैं। नरनारी की क्रीड़ाएं एवं रस की परिपक्व अवस्था को व्यक्त करने वाली भावभंगिमा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठोस अध्ययन की वस्तु है। ठीक इन्हीं भावों को इसी रूप में व्यक्त करने वाला स्तम्भ-शिल्प मुझे अपनी महाकोसल यात्रा में बिलहरी में प्राप्त हुआ था। (चित्र नं० २०) जैसा कि सूचित किया जा चुका है मन्दिर की छत नहीं है। बहुत ही सुन्दर खुदावयुक्त निकट ही पत्थरों पर १२ फीट व्यास से बड़ी स्निग्ध शिला पड़ी हुई है। सौभाग्य से उसे दो पत्थरों का सहारा मिल गया है। झुक कर शिला के अवलोकन करने पर मन मयूर पूर्ण वेग से नाच उठा। कारण कि निम्न भाग में पांच कर्णिका (गोलाकार आकृतियां) व चतुष्कोण में ग्रास एवं चारों ओर अत्यन्त खुदाव युक्त मधुछत्र का अंश दीख पड़ा। (चित्र सं० २१) निस्संदेह यह पूर्व सूचित मंदिर का ही ऊर्ध्व भाग है। शिल्पी ने कमल पंखुड़ियां इतनी सुन्दर व सूक्ष्म रूप में तक्षित (खोदी) की हैं कि उनकी नसें व मुड़ने पर पड़ने वाली झाईं (परछाईं) तक का आभास मिलता है। अच्छा ही हुआ कि दो पत्थरों ने इसे झेल लिया। यदि ऐसा न होता तो शिला पैरों तले रौंदी (कुचली) तो जाती ही, किन्तु, इसका महान कृतित्व भी अदृश्य होकर नष्ट हो जाता। इसी प्रकार का कलचुरिकालीन एक मधुछत्र मैंने विलहरी (कटनी से १० मील जिला जबलपुर) में देखा था। प्रसंगतः सूचित करना अनिवार्य है कि ललित कला, भाव गांभीर्य, पच्चीकारी एवं आकर्षण की दृष्टि से भोजपुर के मधुछत्र की अपेक्षा यह अधिक प्रभावोत्पादक है। इसके निकट ही मधुछत्र के चारों ओर लगने वाले त्रिकोण रेखाङ्कित मंगलमुख का सर्वथा अखंडित अंश शिला पर उत्कीर्ण है। (चित्र नं० २२)। समीप एक शिला पर जो बेलबूटे कढ़े हैं, वे ऐसे लगते हैं

मानो मंगलसुख के अवशेष का विकसित रूप हों। ऐसी ही आकृति एक और भी अवस्थित है। इन तीनों शिल्पावशेषों की रेखांकन पद्धति को गम्भीरता पूर्वक देखने से स्पष्ट कहना पड़ता है कि महाकोसल और परमार शासनाश्रित तक्षकों (कलाकार) में कैसा अद्भुत साम्य है। इस प्रकार की और भी दर्जनों रेखाकृतियां तो चर्चित पत्थरों में खुदी पाई जाती हैं, जिनका उल्लेख नहीं किया गया है। न जाने प्रस्तरसमूह के गर्भ में कितनी अनुकृतियां दबी पड़ी हों, नष्ट हो गई होंगी, कल्पना मात्र से हृदय प्रकम्पित हो जाता है। इन अवशेषों में ४ फीट ७ इन्च लम्बा और १८ फीट चौड़ा तोरणद्वार का एक महत्वपूर्ण अंश विद्यमान है। इसके मध्यभाग में उत्कीर्ण ध्यानी विष्णु की प्रतिमा से प्रमाणित होता है कि निःसन्देह वह इसी खंडित मंदिर का ही तोरण है। ध्यानी विष्णु, विष्णु, उमा-महादेव, नृसिंहावतार, दशावतारी विष्णु, सरस्वती और पार्वती आदि अनेक देवी देवियां व परिचारक परिचारिकाओं की दर्जनों प्रतिमायें खण्डहरों में इधर उधर अरक्षित अवस्था में बिखरी पड़ी हैं। कला, मनोविज्ञान और नृतत्व शास्त्र की दृष्टि से ये प्रतिमायें आशापुरी का अभिमान हैं।

यहां पाठकों का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना वांछनीय है। वह यह कि वैष्णव परम्परा में विष्णु मन्दिर के अग्र भाग में या स्वतन्त्र किसी स्थान में विष्णु स्तम्भ खड़े करवाने की प्रथा भारत में दो सहस्राब्दी से चली आती है, और प्राचीन भागवत स्तम्भ मालव प्रदेश में उपलब्ध भी हो चुके हैं। विदिशा का हेलियोद्रोर स्तम्भ भक्ति-परम्परा का अन्यतम स्मारक है। आशापुरी से प्राप्त दो स्तम्भावशेष इस बात के परिचायक हैं, कि मालव में १२वीं शती तक इस परम्परा का प्रचार था। यद्यपि स्तम्भ के अन्य अवशेष उपलब्ध नहीं हो सके, किन्तु, स्तम्भ के सर्वोच्च भाग अर्थात् सर्वतोभद्र (मूर्ति वाला विभाग) उपलब्ध है। (चित्र नं० २३) निस्सन्देह यह अंश इतना सुन्दर, मार्मिक, सुकुमार और भाव प्रवणता का ज्वलन्त प्रतीक है, कि उसके उद्दीपित सार्वभौमिक सौंदर्य को वर्णमाला के अक्षरों में सीमित नहीं किया जा सकता। उसमें कलाहीन हृदय में अद्भुत स्पन्दन उत्पन्न करने की शक्ति विद्यमान है। सवा पांच फ़ीट ऊंचा और पौने तीन फीट चौड़ा चतुर्मुख तात्कालिक भारतीय मूर्तिविज्ञान कला की उत्प्रेरक सामग्री का मनोरम केन्द्र स्थान है। एक ओर पृथ्वी को दायें हाथ में थामे, बांया पैर कमल पर स्थापित किए, वराह भगवान अंकित हैं। कठोर पत्थर में कमल पंखुड़ियों का स्वाभाविक विन्यास और कमलनाल की संयोजना, नैसर्गिक सी जान पड़ती है। चरण के समीप करबद्ध अंजलि में भक्त स्थितभाव से, प्रीति में सर्वस्व समर्पण की वृत्ति को लिए हैं। दूसरी ओर नृसिंहावतार एवं तीसरी ओर भगवान् विष्णु बिना किरीट-मुकुट के उत्कीर्णित हैं, किन्तु, मस्तक के जूड़े की रेखाएं किरीट से भी अधिक सुहावनी हैं। ठुड्डी का कुछ हिस्सा आगे निकल आने से प्रशान्त वदन अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति को साकार करता है। सूचित तीनों प्रतिमाएं तो स्पष्ट पहिचानी जा सकीं किंतु चतुर्थ भाग भूमिस्थ है। प्रयत्न करने के बावजूद भी पहचानने में सफलता न मिल सकी। वृक्षों की जड़ें मूर्तियों को जकड़ न लें, जैसा कि त्रिपुरी और पनागर में हुआ है।

अब एक ऐसी अल्प खण्डित चतुर्भुजी विष्णु मूर्ति का उल्लेख कर रहे हैं, जो भारतीय मूर्तिकला की महान् प्रेरणास्पद विभूति है। भगवान् विष्णु (चित्र सं २४) वैजन्ती माला पहने खड़े हैं। शंख और चक्र स्पष्ट निर्दिष्ट हैं। परिचारक के अतिरिक्त प्रभावली के ऊपर के भाग में गगन विचरण करने वाले देवगण उत्कीर्णित हैं। हाथों में कमल और पुष्प की माला पहिनाने को समुत्सुक जान पड़ते हैं। शालीनता और सुकुमारता के प्रकाश में निश्छल सौन्दर्य स्वस्थ वृत्ति का मौन परिचय दे रहा है। प्रभावली के निकट कल्कि अवतार का अंकन बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। प्रभावला विशुद्ध परमार मूर्तिकला का अभिमान है। पाणी का मौन कलाकार की दीर्घकालीन शैल्पिक प्रतिभा का निदर्शन उपस्थित करता है। अब एक ऐसी विशाल विष्णु मूर्ति की ओर ध्यान देना है, जो खण्डित होते हुए भी भावनाशील तथ्य की सत्य मूलक परम्परा की साक्षात् प्रतिमा है। (चित्र सं० २५) इसका परिकर आशापुरी में प्राप्त सभी प्रतिमाओं से विस्तृत व भावयुक्त है। इसका प्रभामण्डल सुश्रेष्ठ रेखांकनों का मूर्तिमन्त रूप है। त्रिमूर्ति भी आशापुरी का महान् आकर्षण है। (चित्र सं० ३१) इसका प्रभामण्डल स्वस्थ कला का प्रतीक और नवीनतम अलंकरणों का स्फूर्तिप्रद संस्करण है।

भोजपुर से आते हुये आशापुरी के निकट पण्डित बालाप्रसाद जी ज्योतिषाचार्य के खेत के समीप, मन्दिर के अवशेष, झाड़ियों में बिखरे पड़े हैं। कुरमुटों का ऐसा वन खड़ा हो गया है, (चित्र सं० २६) कि कल्पना तक नहीं की जा सकती कि, यहां पर कुछ अवशेष भी होंगे। यहां एकादश रुद्रयुक्त सहस्रलिंग सहित शिवलिंग है। (चित्र सं० २७) इसकी गोलाई ३ फीट ३ इंच, ऊंचाई १ फुट के लगभग है। लिंग का विशेष महत्व इसलिए है कि अद्यावधि मैंने इस प्रकार की कृति नालन्दा[१] और आशापुरी को छोड़ अन्यत्र नहीं देखी। वर्णित विष्णु मूर्ति के खण्डहर के समान इस पर भी १४×१२ फीट की एक शिला पड़ी हुई है। निकट ही जो खण्डहर है, उसमें चतुर्मुख विष्णुस्तम्भ तोरणद्वार, जगती के अवशेष और अन्य गड़े हुए पत्थर वृक्षों की जड़ों से लिपट से गए हैं।

जैन मूर्तियां

जिस प्रकार भोजपुर में स्वतन्त्र जैन मन्दिर है, उसी प्रकार आशापुरी में भी बहुत बड़ा तीर्थङ्कर प्रासाद रहा जान पड़ता है। आशापुरी के निकट जलाशय तट पर कुरमुटों के भीतर दो दर्जन से अधिक जैनमूर्तियां २ फर्लाङ्ग व्यास-परिधि में बिखरी पड़ी हैं। एक प्रतिमा जो २० फीट से कम न होगी, जमीन पर लेटी हुई है। (चित्र संख्या २८) सुना जाता है कि यहां दो समय विशाल चार जिन प्रतिमाएं निर्मित हुई थीं, जो क्रमशः आशापुरी, समसगढ़, कुराना, और भोजपुर में विद्यमान हैं।

१—मुनि कान्तिसागर—खोज की पगडंडियां पृ० १४१।

आशापुरी शिव, शक्ति, भक्ति और जैन परम्परा का अद्‌भुत समन्वयात्मक केन्द्र रहा है। यद्यपि उपर्युक्त कलाकृतियों व शिला पर एक भी लेख अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुआ, जो आशापुरी व तक्षण (शिल्प) कला के निर्माण काल को आलोकित कर सके, किन्तु, कलाकृतियां एवं तदुपरि खचित रेखांकन स्वयं निर्माणकाल का सूचन करते हैं। महाकोसल की लेखयुक्त कलाकृतियां भी आशापुरी के अवशेषों की आयु स्थिर करने में सहायक हैं, जैसा कि बरहटा व आशापुरी (चित्र सं० २६) से स्पष्ट है। यों तो भोजपुर के मन्दिर में भी सूचित रेखाएं खचित हैं, किन्तु, बहुत कुछ अंशों से आशापुरी में अधिक विकसित होगई हैं। इन्हीं से प्रान्तीय कलात्मक आदान-प्रदान का आभास मिलता है। तात्पर्य आशापुरी की जैन मूर्तियों को छोड़कर समस्त मूर्तियां १२वीं शती के बाद और ११वीं शती के द्वितीय चरण के पूर्व की नहीं हो सकती। आशापुरी की अधिकतर मूर्तियां गार्हस्थिक शालीनता और आभिजात्य का द्योतन करती हैं। बहुत कम ऐसी मूर्तियां हैं, जो अपेक्षतया नृतत्वशास्त्र का और तात्कालिक लोकरुचि का सफल प्रतिनिधित्व कर सकें। जब कि भोजपुर के मन्दिर के अग्रभागीय स्तम्भ की मूर्तियां नृतत्वविज्ञान की ठोस सामग्री उपस्थित करती हैं। बिना किसी अत्युक्ति के साथ कहना चाहिए कि भोजपुर स्थापत्य कला का अनन्य प्रतीक है, तो आशापुरी तात्कालिक मूर्तिविज्ञान कला का अविस्मरणीय केन्द्र, जहां वाणीविहीन भाषा जीवनगत सत्य को साकार कर देती है। भाव जगत का ऐसा दृश्य-साहित्य सामूहिक रूप से कम से कम भोपाल के भूभाग में अन्यत्र अत्यल्प ही मिलेगा। समुन्नत भारतीय मूर्तिविज्ञान के अध्येता और समीक्षकों का एतद्‌विषयक अध्ययन तब तक अपूर्ण रहेगा, जब तक परमार-कालीन इन सौन्दर्यमय परिपक्व रसपूर्ण भाव रेखाओं को गम्भीरतापूर्वक न देख लें।

भोजपुर और आशापुरी भोपाल के गौरव हैं। शिल्पियों की अक्षुण्ण जीवनप्रेरक विचारधारा से आज भी हमें महती प्रेरणा मिलती है और गौरव का उद्भव होता है। आत्मिक विभूतियों के प्रति हमारे आनन में श्रद्धा और भक्ति का आविर्भाव होता है, किन्तु, खेद है कि दीर्घकालव्यापी कलाकार की साधनाप्रसूत सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति स्वरूप जो सृजन हुआ, वह आज पूर्णतः उपेक्षित है। जिससे हम प्रेरित होते थे, वे आज हमसे प्रेरणा पाने की स्थिति में हैं। कितना वैषम्य? भोजपुर और आशापुरी के भारतीय संस्कृति के मुख को उज्ज्वल करने वाले प्रतीकों की दयनीय दशा देखकर हृदय दहल उठता है। भोजपुर के मन्दिर की अव्यवस्था सामान्य प्रेक्षक तक को ग्लानि पैदा कर सकती है। मधुछत्तों का लगा रहना, बन्दरों के पेशाब से कलाकृतियों का दैनंदिन बिगड़ते रहना, महीनों तक कूड़े का न हटना, ये सब घनघोर अव्यवस्था के प्रतीक हैं। यात्रियों के ठहरने का कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध का न होना और व्यवस्थित मार्ग का अभाव, सचमुच लज्जाजनक है। आशापुरी के अतीत और वैभव के ये अनाथ अवशेष किसी भी अद्‌भुतालय की स्थायी शोभा बन सकते हैं, किन्तु, आज वह इस प्रकार झाड़ी झुरमुटों में छिपे पड़े हैं, कि उनके वहां होने का आभास तक, अपरिचित को नहीं मिलता। न जाने ढहे हुये खण्डहरों में कितनी सुकुमार और भावनाशील कृतियां दबी पड़ी होंगी। धनलोलुपों द्वारा कतिपय मूर्तियां निर्भयतापूर्वक नष्ट भी कर भी दी गई हैं। सौभाग्य इस बात का है कि महाकोसल के समान यहां की जनता ने इन कलाकृतियों का मनमाना उपयोग नहीं किया है।

तब तक अपूर्ण रहेगा, जब तक परस्पर-
रेखाओं को गम्भीरतापूर्वक न देख लें।

रव हैं। शिल्पियों की अक्षुण्ण जीवनप्रेरक
है और गौरव का उद्भव होता है। आत्मिक
क्ति का आविर्भाव होता है, किन्तु, खेद है कि
की प्रतिमूर्ति स्वरूप जो सृजन हुआ, वह आज
, वे आज हमसे प्रेरणा पाने की स्थिति में हैं।
भारतीय संस्कृति के मुख को उज्ज्वल करने
उठता है। भोजपुर के मन्दिर की अव्यवस्था
है।. मधुछत्तों का लगा रहना, बन्दरों के पेशाव
तक कूड़े का न हटना, ये सब घनघोर अव्यवस्था
सन्तोषजनक प्रबन्ध का न होना और व्यवस्थित
ो के अतीत और वैभव के ये अनाथ अवशेष
हैं, किन्तु, आज वह इस प्रकार झाड़ी झुरमुटों
. अपरिचित को नहीं मिलता। न जाने ढहे हुये
तियां दबी पड़ी होंगी। धनलोलुपों द्वारा कतिपय
सौभाग्य इस बात का है कि महाकोसल के समान
उपयोग नहीं किया है।

भोजपुर के आसपास सिलावटों की (शिल्पी-तक्षक) संख्या अधिक है। इनका कहना है कि हमारे पूर्वजों ने ही भोजपुर और आशापुरी का सफल सृजन किया। यदि इस जाति का मुखगत साहित्य (लोक साहित्य) एकत्र किया जाय तो अवश्य ही भोजपुर और आशापुरी के इतिहास पर नूतन प्रकाश पड़ सकेगा। उभय स्थानों में शासन की ओर से शोध कार्य भी नहीं हुआ है। यदि निकटवर्ती प्रदेश अनुभवी अन्वेषकों द्वारा खुदवाया जाय तो बहुत सी मौलिक सामग्री निकल सकती है।

कला और संस्कृति का अभिन्न सम्बन्ध है। पारस्परिक योगदान से दोनों का स्वरूप निखरता है। मानवीय जीवन का गम्भीर वैज्ञानिक चिन्तन व समाजमूलक प्रवृत्तियों का विकास, पुरातन शिल्प रेखाओं में परिलक्षित होता है। अतीत की दिव्य ज्योति का आंशिक प्रतिबिम्ब भावी विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। भोपाल व निकटवर्ती खण्डहर क्षतविक्षत स्थिति में आज हमारी कलापरक भावना को चुनौती दे रहे हैं। इन खण्डहरों में व्याप्त विगत गौरव की आत्मा हमारा मार्ग आलोकित कर रही है। अतः आज वहाँ अनुसंधान एवं सत्यान्वेषण के क्षेत्र में जागरूक चिन्तन नितान्त वांछनीय है।

अतीत की गौरवमय परम्परा को हम पुनः जनजीवन में चरितार्थ करें और तत्सम्बन्ध में जनता की जिज्ञासा को निरन्तर जागरूक बनाए रखें, यही कामना है। भोजपुर और आशापुरी सम्बन्धी यह पुस्तिका पुरातत्व के क्षेत्र में जनता की ज्ञानशलाका को उद्दीपित करती रहे।१

१—आंशों में एक पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थों का जैन भण्डार है। इसमें बहुमूल्य भारतीय साहित्य-निधि सुरक्षित है। इसकी सूचना मुझे श्री चन्दनमल जी बलवट ने दी थी। शासन यदि प्रयत्न करे तो निश्चित इससे अमूल्य सामग्री प्रकाश में आ सकती है।

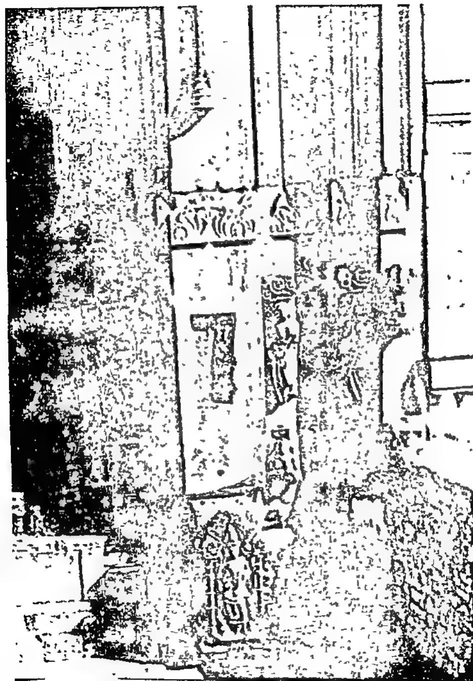
इति



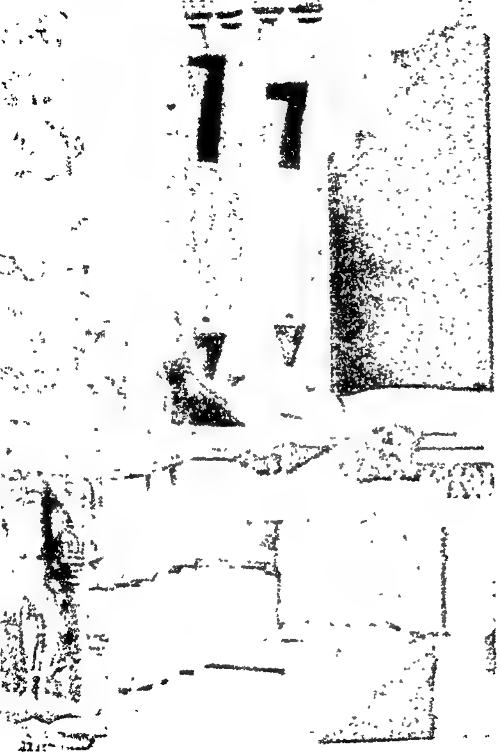
चित्र संख्या १ मन्दिर के दाहिने स्तम्भ के निम्न भाग पर उत्कीर्णित भगवान शंकर (भोजपुर)



री मूर्तियां (भोजपुर)



चित्र संख्या ३ मुख्य मन्दिर का दाहिना भाग (भोजपुर)



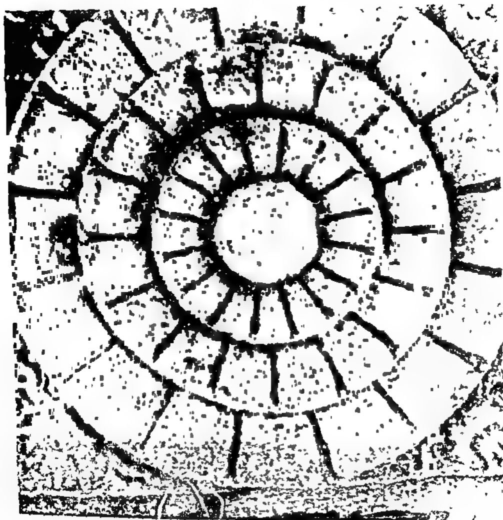
का अपूर्ण बांया भाग (भोजपुर)



चित्र संख्या ५   मन्दिर की देहली (भोजपुर)



चित्र सं० ६ [illegible]

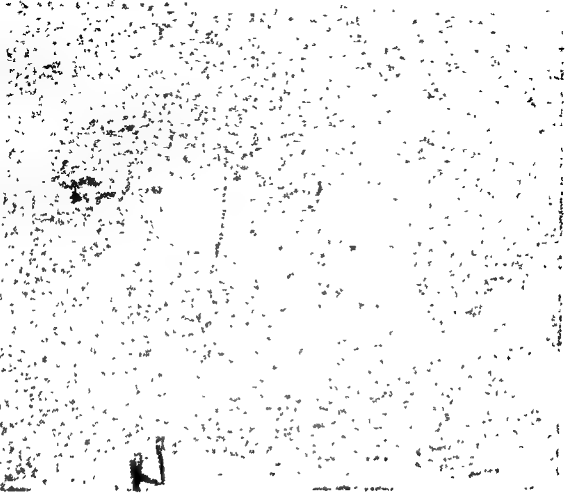


चित्र संख्या-७ मधुचक्र (भोजपुर)

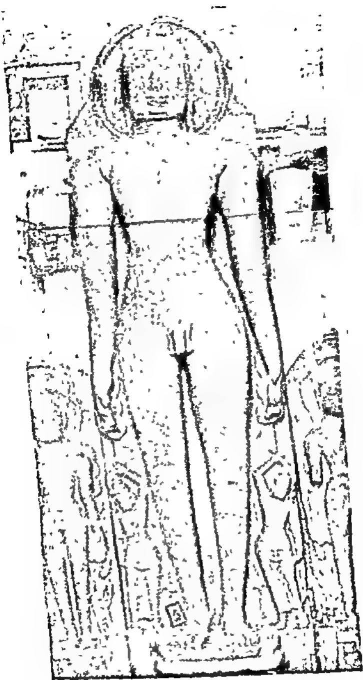


जाली की रेखाएं (मथुरा)

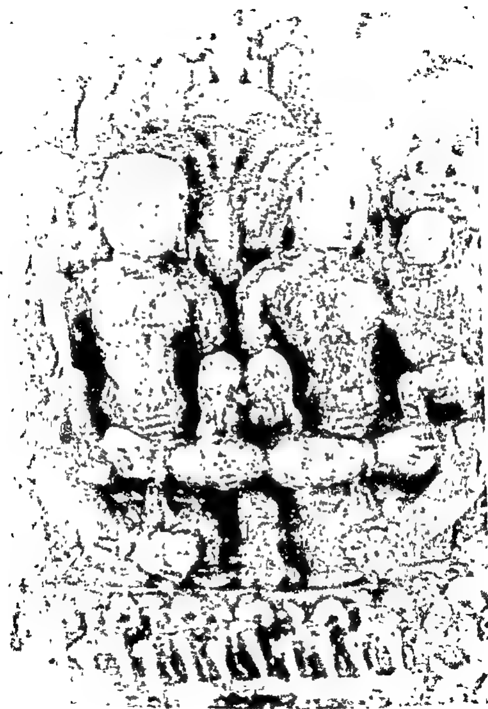
चित्र संख्या ६   गौस मुहम्मद द्वारा प्रदत्त दानपत्र (भोजपुर)



. द्वारा प्रदत्त दानपत्र (भोजपुर)



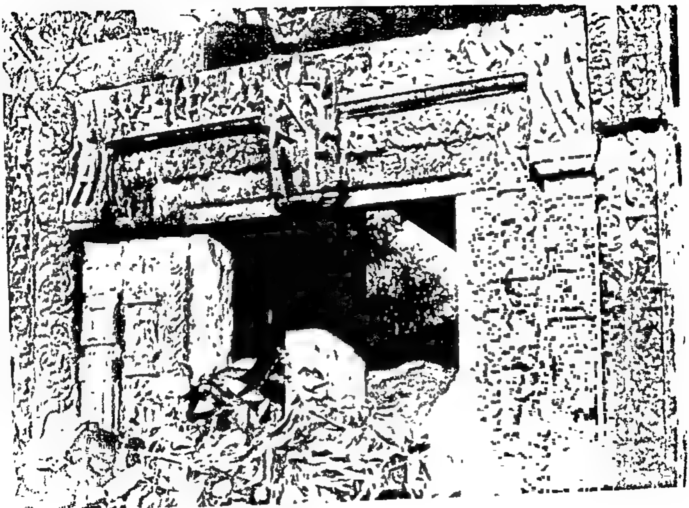
चित्र नं० ११ विशाल जैन प्रस्तर मूर्ति (भोजपुर)



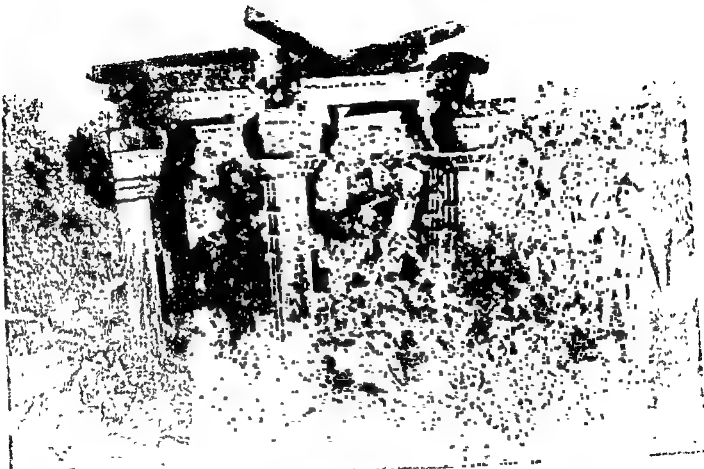
चित्र सं० १२ [illegible]



मा (आशापुरी)



चित्र नं० १५. हर्षतमाता के मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर प्रदर्शित दुर्गा (आभानेरी)



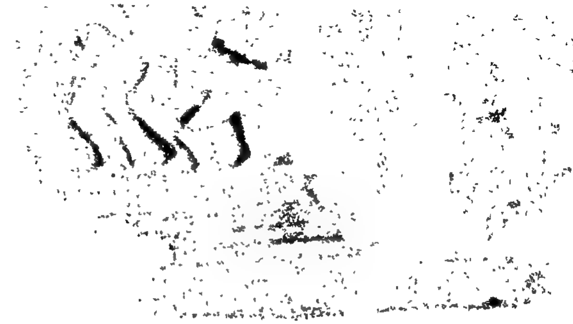
चित्र नं० १७ ध्वस्त विष्णु मंदिर का कलापूर्ण स्तंभ समूह (आशापुरी)



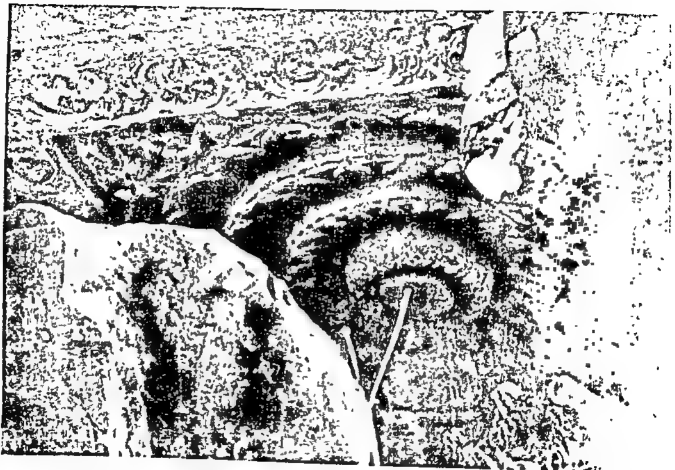
का कलापूर्ण स्तंभ (आशापुरी)



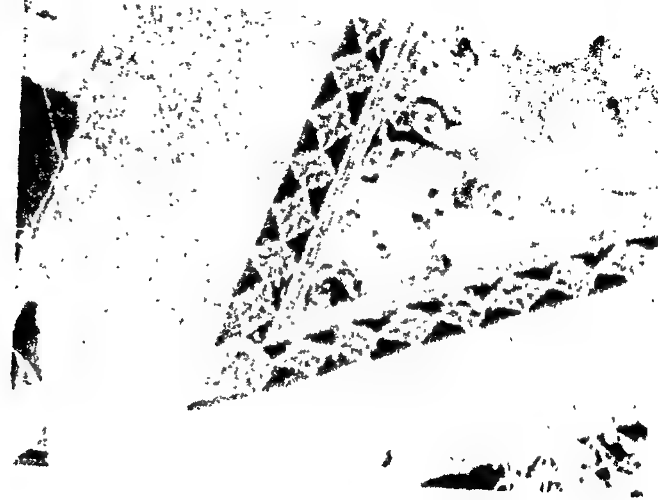
चित्र संख्या १६ लोक जीवन और आमोद प्रमोद (आरापुरी)



चित्र नं० २०   लोफ जी



चित्र संख्या २१   विष्णु मन्दिर का विशाल मधुछत्र (आशापुरी)



चित्र संख्या २२ आशापुरी के विष्णु



त्र नं० २३ भगवान विष्णु के विविध अवतारों को व्यक्त करने वाले सर्वतोभद्र स्तम्भ का उपरिभाग (आशापुरी)



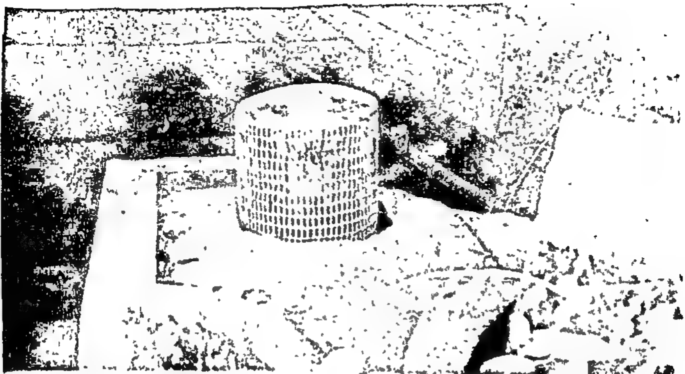
की अत्यंत कलापूर्ण प्रतिमा (आशापुरी)



चित्र संख्या २५ लता गुल्मों से परिवेष्ठित विष्णु मूर्ति (बाराापुरी)



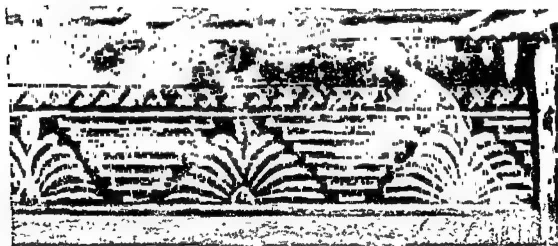
पला संस्कृति का रूप (आशापुरी)



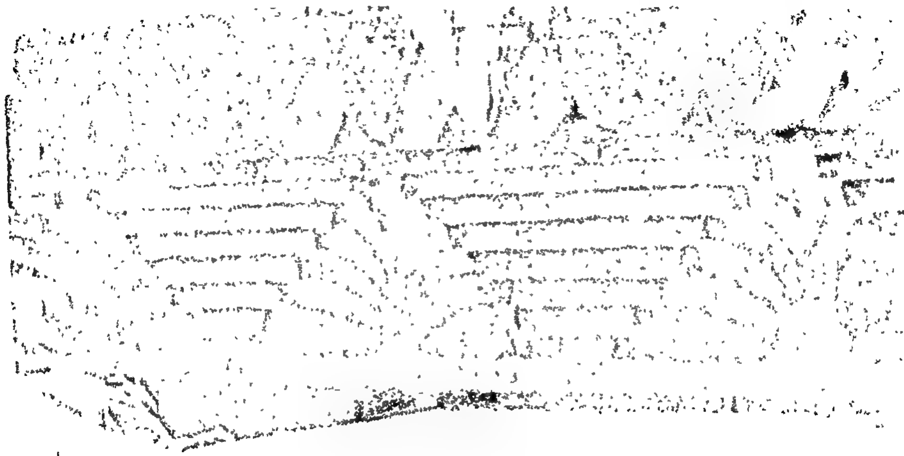
चित्र संख्या २७ एकादश रुद्र युक्त शिवलिंग (आशपुरी)



पड़ी भीमकाय जैन मूर्ति (आशापुरी)



चित्र नं० २६ बरहटा की रेखाकृतियां



चित्र संख्या ३० ध्वस्त विष्णु मन्दिर-पर उत्कीर्णित ति

मुद्रणालय भोपाल,द्वारा मुद्रित।